हिन्दी साहित्य
आधुनिक परिदृश्य

(Hindi Literature: Modern Scenario)

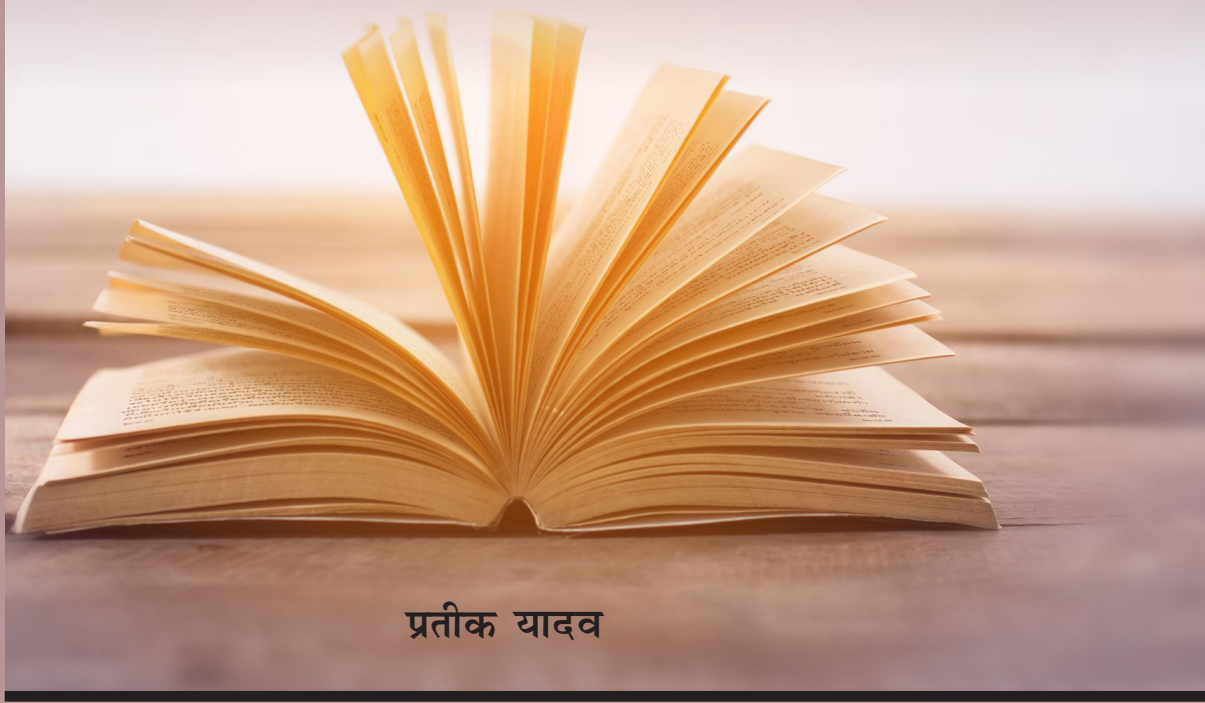

प्रतीक यादव

हिन्दी साहित्य : आधुनिक परिदृश्य

हिन्दी साहित्य : आधुनिक परिदृश्य
(Hindi Literature: Modern Scenario)

प्रतीक यादव

भाषा प्रकाशन
नई दिल्ली - 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-5584-7

प्रथम संस्करण : 2021

भाषा प्रकाशन

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

प्रस्तावना

हिन्दी भारत और विश्व में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं में से एक है। उसकी जड़ें प्राचीन भारत की संस्कृत भाषा में तलाशी जा सकती हैं। परंतु हिन्दी साहित्य की जड़ें मध्ययुगीन भारत की अवधी, मागधी, अर्धमागधी तथा मारवाड़ी जैसी भाषाओं के साहित्य में पायी जाती हैं। हिंदी में गद्य का विकास बहुत बाद में हुआ और इसने अपनी शुरुआत कविता के माध्यम से की जो कि ज्यादातर लोकभाषा के साथ प्रयोग कर विकसित की गई। हिंदी का आरंभिक साहित्य अपभ्रंश में मिलता है।

सन् 1850 से भारत में राष्ट्रीयता के बीज अंकुरित होने लगे थे। छापेखाने का आविष्कार हुआ, आवागमन के साधन आम आदमी के जीवन का हिस्सा बने। समय के साथ-साथ जन संचार के विभिन्न साधनों का विकास हुआ, रेडियो, टी. वी. व समाचार पत्र हर घर का हिस्सा बने और शिक्षा हर व्यक्ति का मौलिक अधिकार। इन सब परिस्थितियों का प्रभाव हिंदी साहित्य पर अनिवार्यत: पड़ा। आधुनिक काल का हिंदी पद्य साहित्य पिछली सदी में विकास के अनेक पड़ावों से गुजरा। जिसमें अनेक विचार धाराओं का बहुत तेजी से विकास हुआ। जहां काव्य में इसे छायावादी युग, प्रगतिवादी युग, प्रयोगवादी युग, नयी कविता युग और साठोत्तरी कविता इन नामों से जाना गया, छायावाद से पहले के पद्य को भारतेंदु हरिश्चंद्र युग और महावीर प्रसाद द्विवेदी युग को दो और युगों में बांटा गया। इसके विशेष कारण भी हैं।

हिंदी साहित्य शुरू करने का श्रेय प्रसिद्ध फ्रेंच विद्वान लेखक गार्सा दतासी को दिया जा सकता है। हिंदी गद्य के अविर्भाव के संबंध में विद्वान एकमत नहीं है। कुछ 10वीं शताब्दी मानते हैं, कुछ 11वीं शताब्दी, कुछ 13 शताब्दी। राजस्थानी एवं ब्रज भाषा में हमें गद्य के प्राचीनतम प्रयोग मिलते हैं। राजस्थानी गद्य की समय सीमा 11वीं शताब्दी से 14वीं शताब्दी तथा ब्रज गद्य की सीमा 14वीं शताब्दी से 16वीं शताब्दी तक मानी जाती हैं। माना जाता है कि 10वीं शताब्दी से 13वीं शताब्दी के मध्य ही हिंदी गद्य की शुरुआत हुई थी। खड़ी बोली के प्रथम दर्शन अकबर के दरबारी कवि गंग द्वारा रचित चंद छंद बरनन की महिमा में होते हैं।

पुस्तक लेखन में कई लिखित व अलिखित स्रोतों से मदद ली गई है; मैं उन सभी विज्ञ लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ। आशा करता हूँ कि पुस्तक पाठकों के लिए उपयोगी होगी।

–लेखक

अनुक्रम

	प्रस्तावना	*v*
1.	**हिंदी साहित्य**	**1**
	परिचय	2
	संरचना	3
	सिद्ध और नाथ साहित्य	5
	रामाश्रयी शाखा	16
	ज्ञानाश्रयी मार्गी	18
	रीति काल	20
	हिंदी प्रदेशों की हिंदी बोलियाँ	30
2.	**आधुनिक हिंदी पद्य का इतिहास**	**32**
	भारतेंदु हरिश्चंद्र युग की कविता (1850-1900)	32
	पं महावीर प्रसाद द्विवेदी युग की कविता (1900-1920)	33
	छायावादी युग की कविता (1920-1936)	34
	उत्तर-छायावाद युग-(1936-1943)	34
3.	**आधुनिक हिंदी गद्य का इतिहास**	**37**
	ईस्वी से 1900 ईस्वी तक	37
	19वीं सदी से पहले का हिन्दी गद्य	38

भारतेंदु पूर्व युग 38
भारतेंदु युग 39
द्विवेदी युग 39
रामचंद्र शुक्ल एवं प्रेमचंद युग 40
अद्यतन काल 41
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास 43
हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन का इतिहास 44
हिन्दी साहित्य के इतिहासकार और उनके ग्रन्थ 44
हिन्दी साहित्य के विकास के विभिन्न काल 45
आदिकाल (650ई से 1350ई) 46
भक्तिकाल (1375 से 1700 ई.) 47
रीतिकाल (1700 से 1900 ई.) 48
5. वैदिक संस्कृत 57
लौकिक संस्कृत का वैदिक संस्कृत से भेद 58
अवस्ताई फारसी और वैदिक संस्कृत की तुलना 61
वैदिक साहित्य का काल 63
व्याकरण 69
6. पाणिनि 71
जीवनी एवं कार्य 71
पाणिनि का महत्त्व 77
पाणिनि की सूत्र शैली 77
आज के औपचारिक तन्त्रों के साथ तुलना 79
7. संस्कृत व्याकरण 81
8. बौद्ध धर्म 90
गौतम बुद्ध 90
पालि साहित्य 95
बुद्ध की शिक्षाएँ 95
अष्टांगिक मार्ग 96
पंचशील 97
बोधि 97

भरहुत 98
लुम्बिनी 102
9. आधुनिककालीन हिंदी साहित्य का इतिहास–छायावाद 106
छायावाद (1918 से 1937 ई.) 106
परिवेश 107
परिभाषा 108
प्रतिनिधि कवि 109
महादेवी वर्मा 111
प्रवृत्तियां-विशेषताएँ 112
प्रकृति काव्य 112
नवीन अभिव्यंजना पद्धति 113
अन्योक्तिपद्धति का अवलंबन 113
सहृदयता और प्रभावसाम्य 114
प्रणयानुभूति की प्रधानता 114
गीतात्मक शैली 115
गुंजन 115
छायावाद युगीन अन्य काव्यधाराएँ 117
गद्य-साहित्य 119
10. आधुनिककालीन हिंदी साहित्य का इतिहास– प्रगतिवाद 127
परिस्थितियां 127
नवीन सौंदर्यदृष्टि 128
रूढ़ि-विरोधी 128
क्रांतिधर्मी 129
मानवतावादी 129
स्त्री मुक्ति आकांक्षी 129
इहलौकिक 129
11. आधुनिककालीन हिंदी साहित्य का इतिहास-नई कविता 131
परिभाषा और स्वरूप 131
परिवेश 132
साहित्यिक वातावरण 134

नई कविता की काव्यगत प्रवृत्तियाँ 135
12. आधुनिक काल **148**
हिन्दी गद्य का उद्‌भव एवं विकास 148
प्रमुख रचनाएं - 152

1

हिंदी साहित्य

हिन्दी भारत और विश्व में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं में से एक है। उसकी जड़ें प्राचीन भारत की संस्कृत भाषा में तलाशी जा सकती हैं। परंतु हिन्दी साहित्य की जड़ें मध्ययुगीन भारत की अवधी, मागधी, अर्धमागधी तथा मारवाड़ी जैसी भाषाओं के साहित्य में पायी जाती हैं। हिंदी में गद्य का विकास बहुत बाद में हुआ और इसने अपनी शुरुआत कविता के माध्यम से जो कि ज्यादातर लोकभाषा के साथ प्रयोग कर विकसित की गई। हिंदी का आरंभिक साहित्य अपभ्रंश में मिलता है। हिंदी में तीन प्रकार का साहित्य मिलता है। गद्य पद्य और चम्पू। हिंदी की पहली रचना कौन सी है इस विषय में विवाद है, लेकिन ज्यादातर साहित्यकार देवकीनन्दन खत्री द्वारा लिखे गये उपन्यास चंद्रकांता को हिन्दी की पहली प्रामाणिक गद्य रचना मानते हैं।

हिन्दी साहित्य के अब तक लिखे गए इतिहासों में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा लिखे गए हिन्दी साहित्य का इतिहास को सबसे प्रामाणिक तथा व्यवस्थित इतिहास माना जाता है। आचार्य शुक्ल जी ने इसे हिन्दी शब्दसागर की भूमिका के रूप में लिखा था जिसे बाद में स्वतंत्र पुस्तक के रूप में 1929 ई0 में प्रकाशित आंतरित कराया गया। आचार्य शुक्ल ने गहन शोध और चिन्तन के बाद हिन्दी साहित्य के पूरे इतिहास पर विहंगम दृष्टि डाली है।

इतिहास-लेखन में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल एक ऐसी क्रमिक पद्धति का अनुसरण करते हैं, जो अपना मार्ग स्वयं प्रशस्त करती चलती है। विवेचन में तर्क

का क्रमबद्ध विकास ऐसे है कि तर्क का एक-एक चरण एक-दूसरे से जुड़ा हुआ, एक-दूसरे में से निकलता दिखता है। लेखक को अपने तर्क पर इतना गहन विश्वास है कि आवेश की उसे अपेक्षा नहीं रह जाती।

आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक आचार्य शुक्ल का इतिहास इसी प्रकार तथ्याश्रित और तर्कसम्मत रूप में चलता है। अपनी आरम्भिक उपपत्ति में आचार्य शुक्ल ने बताया है कि साहित्य जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्बित होता है। इन्हीं चित्तवृत्तियों की परम्परा को परखते हुए साहित्य-परम्परा के साथ उनका सामंजस्य दिखाने में आचार्य शुक्ल का इतिहास और आलोचना-कर्म निहित है।

इस इतिहास की एक बड़ी विशेषता है कि आधुनिक काल के सन्दर्भ में पहुँचकर शुक्ल जी ने यूरोपीय साहित्य का एक विस्तृत, यद्यपि कि सांकेतिक ही, परिदृश्य खड़ा किया है। इससे उनके ऐतिहासिक विवेचन में स्रोत, सम्पर्क और प्रभावों की समझ स्पष्टतर होती है।

परिचय

शुक्ल जी ने इतिहास लेखन का यह कार्य कई चरणों में पूरा किया था। सबसे पहले उन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में छात्रों को पढ़ाने हेतु साहित्य के इतिहास पर संक्षिप्त नोट तैयार किया था। इस संक्षिप्त नोट के बारे में शुक्लजी ने खुद लिखा है, 'जिनमें (नोट में) परिस्थिति के अनुसार शिक्षित जनसमूह की बदलती हुई प्रवृत्तियों को लक्ष्य करके हिन्दी साहित्य के इतिहास के कालविभाग और रचना की भिन्न-भिन्न शाखाओं के निरुपण का एक कच्चा ढाँचा खड़ा किया गया था।' इसी समय के आसपास हिन्दी शब्दसागर का कार्य पूर्ण हुआ और यह निश्चय किया गया कि भूमिका के रूप में 'हिन्दी भाषा का विकास' और 'हिन्दी साहित्य का विकास' दिया जाएगा। आचार्य शुक्ल ने एक नियत समय के भीतर हिन्दी साहित्य का विकास लिखा। कहना न होगा कि इस कार्य में उन्होंने संक्षिप्त नोट से भरपूर मदद ली। इस तरह हिन्दी साहित्य के इतिहास का एक कच्चा ढाँचा तैयार तो हो गया परन्तु शुक्ल जी इससे पूरी तरह सन्तुष्ट न थे।

आचार्य शुक्ल द्वारा लिखी गई शब्दसागर की भूमिका से पूर्व साहित्येहितासनुमा कुछ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी थीं। गार्सा द तासी, शिवसिंह सेंगर, ग्रियर्सन आदि इस क्षेत्र में कुछ प्रयास कर चुके थे। नागरी प्रचारिणी सभा ने 1900 से 1913

ई. तक पुस्तकों की खोज का कार्य व्यापक पैमाने पर किया था। इस कार्य से अनेक ज्ञात-अज्ञात रचनाओं और रचनाकारों का पता चला था। इस सामग्री का उपयोग कर मिश्रबन्धुओं ने 'मिश्रबंधु-विनोद' तैयार किया था। रीतिकालीन कवियों के परिचयात्मक विवरण देने में शुक्ल जी ने मिश्र बन्धुविनोद का भरपूर उपयोग किया था। एक तरह से देखा जाये तो आचार्य शुक्ल के साहित्येतिहास लेखन से पूर्व दो प्रकार के साहित्यिक स्रोत मौजूद थे। एक तो खुद शुक्लजी द्वारा तैयार की गई नोट और भूमिका तथा दूसरे, अन्य विद्वानों द्वारा लिखी गई पुस्तकें। इन सबकी मदद से आचार्य शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' लिखा जो 'शब्द सागर' की भूमिका के छह महीने बाद 1929 ई. में प्रकाशित हुआ। आगे चलकर हिंदी साहित्य का इतिहास पुस्तक का ऑनलाइन संपादन प्रमुख लेखक तथा भाषा शिक्षक डॉ. सुरेश कुमार मिश्रा, रंगारेड्डी आंध्र प्रदेश के नेतृत्व दल में संपन्न हुआ।

'हिन्दी साहित्य का इतिहास' का संशोधित और परिवर्धित संस्करण सन् 1940 में निकला। यह संस्करण प्रथम संस्करण से भिन्न था। इस संस्करण में अन्य चीजों के अलावा 1940 ई. तक के साहित्य का आलोचनात्मक विवरण भी दे दिया गया था। अब यह साहित्येतिहास की पुस्तक एक मुकम्मल पुस्तक का रूप ले चुकी थी।

संरचना

इस ग्रन्थ में आदिकाल यानी वीरगाथा काल का अपभ्रंश काव्य एवं देश की भाषा काव्य के विवरण के बाद भक्तिकाल की ज्ञानमार्गी, प्रेममार्गी, रामभक्ति शाखा, कृष्णभक्ति शाखा तथा इस काल की अन्य रचनाओं को अपने अध्ययन का केन्द्र बनाया है। इसके बाद के रीतिकाल के सभी लेखक-कवियों के साहित्य को इसमें समाहित किया है। अध्ययन को आगे बढ़ाते हुए आधुनिक काल के गद्य साहित्य, उसकी परंपरा तथा उत्थान के साथ काव्य को अपने विवेचन केन्द्र में रखा है।

प्रथम संस्करण का वक्तव्य

संशोधित और परिवर्धित संस्करण के सम्बन्ध में दो बातें–

(1) काल विभाग

(2) आदिकाल (वीरगाथा, काल संवत् 1050-1375)

1. सामान्य परिचय
2. अपभ्रंश काव्य
3. देशभाषा काव्य
4. फुटकर रचनाएँ।

पूर्व-मध्यकाल (भक्तिकाल, संवत् 1375-1700)

1. सामान्य परिचय
2. ज्ञानाश्रयी शाखा
3. प्रेममार्गी (सूफी) शाखा
4. रामभक्ति शाखा
5. कृष्णभक्ति शाखा
6. भक्तिकाल की फुटकर रचनाएँ

उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल, संवत् 1700-1900)

1. सामान्य परिचय
2. रीति ग्रन्थकार कवि
3. रीतिकाल के अन्य कवि

आधुनिक काल (गद्यकाल, संवत् 1900-1980)

1. सामान्य परिचय–गद्य का विकास
2. गद्य साहित्य का आविर्भाव
3. आधुनिक गद्यसाहित्य परम्परा का प्रवर्तन प्रथम उत्थान (संवत् 1925-1950)
4. गद्य साहित्य परम्परा का प्रवर्तन–प्रथम उत्थान
5. गद्य साहित्य का प्रसार द्वितीय उत्थान (संवत् 1950-1975)
6. गद्य साहित्य का प्रसार
7. गद्य साहित्य की वर्तमान गति तृतीय उत्थान (संवत् 1975 से)।
   काव्यखण्ड (संवत् 1900-1925)
   काव्यखण्ड (संवत् 1925-1950)
   काव्यखण्ड (संवत् 1950-1975)
   काव्यखण्ड (संवत् 1975)

हिन्दी साहित्य के इतिहास में लगभग 8वीं शताब्दी से लेकर 14वीं शताब्दी के मध्य तक के काल को आदिकाल कहा जाता है। इस युग को यह नाम डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी से मिला है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'वीरगाथा काल' तथा विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इसे 'वीरकाल' नाम दिया है। इस काल की समय के आधार पर साहित्य का इतिहास लिखने वाले मिश्र बंधुओं ने इसका नाम प्रारंभिक काल किया और आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने बीजवपन काल। डॉ. रामकुमार वर्मा ने इस काल की प्रमुख प्रवृत्तियों के आधार पर इसको चारण-काल कहा है और राहुल संकृत्यायन ने सिद्ध-सामन्त काल।

इस समय का साहित्य मुख्यत: चार रूपों में मिलता है–

सिद्ध-साहित्य तथा नाथ-साहित्य,

जैन साहित्य,

चारणी-साहित्य,

प्रकीर्णक साहित्य।

सिद्ध और नाथ साहित्य

यह साहित्य उस समय लिखा गया जब हिंदी अपभ्रंश से आधुनिक हिंदी की ओर विकसित हो रही थी। बौद्ध धर्म की वज्रयान शाखा के अनुयायी उस समय सिद्ध कहलाते थे। इनकी संख्या चौरासी मानी गई है। सरहपा (सरोजपाद अथवा सरोजभद्र) प्रथम सिद्ध माने गए हैं। इसके अतिरिक्त शबरपा, लुइपा, डोम्भिपा, कण्हपा, कुक्कुरिपा आदि सिद्ध सहित्य के प्रमुख् कवि हैं। ये कवि अपनी वाणी का प्रचार जन भाषा में करते थे। उनकी सहजिया प्रवृत्ति मनुष्य की स्वाभाविक वृत्ति को केंद्र में रखकर निर्धारित हुई थी। इस प्रवृत्ति ने एक प्रकार की स्वच्छंदता को जन्म दिया जिसकी प्रतिक्रिया में नाथ संप्रदाय शुरू हुआ। नाथ-साधु हठयोग पर विशेष बल देते थे। वे योग मार्गी थे। वे निर्गुण निराकार ईश्वर को मानते थे। तथाकथित नीची जातियों के लोगों में से कई पहुंचे हुए सिद्ध एवं नाथ हुए हैं। नाथ-संप्रदाय में गोरखनाथ सबसे महत्वपूर्ण थे। आपकी कई रचनाएं प्राप्त होती हैं। इसके अतिरिक्त चौरन्गीनाथ, गोपीचन्द, भरथरी आदि नाथ पन्थ के प्रमुख कवि हैं। इस समय की रचनाएं साधारणत: दोहों अथवा पदों में प्राप्त होती हैं, कभी-कभी चौपाई का भी प्रयोग मिलता है। परवर्ती संत-साहित्य पर सिद्धों और विशेषकर नाथों का गहरा प्रभाव पड़ा है।

जैन साहित्य

अपभ्रंश की जैन-साहित्य परंपरा हिंदी में भी विकसित हुई है। जैन कवियों ने जैन धर्म के प्रचार-प्रसार हेतु जो साहित्य लिखा वह जैन साहित्य कहलाता हैं।

जैन कवियों ने जैन धर्म के प्रचार-प्रसार हेतु जो साहित्य लिखा वह जैन साहित्य कहलाता है। बड़े-बड़े प्रबंधकाव्यों के उपरांत लघु खंड-काव्य तथा मुक्तक रचनाएं भी जैन-साहित्य के अंतर्गत आती हैं। स्वयंभू का पउम-चरिउ वास्तव में राम-कथा ही है। स्वयंभू, पुष्पदन्त, धनपाल आदि उस समय के प्रख्यात कवि हैं। गुजरात के प्रसिद्ध जैनाचार्य हेमचंद्र भी लगभग इसी समय के हैं। जैनों का संबंध राजस्थान तथा गुजरात से विशेष रहा है, इसीलिए अनेक जैन कवियों की भाषा प्राचीन राजस्थानी रही है, जिससे अर्वाचीन राजस्थानी एवं गुजराती का विकास हुआ है। सूरियों के लिखे राम-ग्रंथ भी इसी भाषा में उपलब्ध हैं।

रासो साहित्य

इस काल में रासो साहित्य की तीन प्रवृतियाँ देखने को मिलती हैं–

1. वीरगाथात्मक-पृथ्वीराज रासो,हम्मीर रासो,परमाल रासो
2. धार्मिकता-भारतेश्वर बाहुबली रास
3. श्रृंगारिकता-संदेश रासक

चारणी-साहित्य

इसके अंतर्गत चारण के उपरांत ब्रह्मभट्ट और अन्य बंदीजन कवि भी आते हैं। सौराष्ट्र, गुजरात और पश्चिमी राजस्थान में चारणों का, तथा ब्रज-प्रदेश, दिल्ली तथा पूर्वी राजस्थान में भट्टों का प्राधान्य रहा था। चारणों की भाषा साधारणत: राजस्थानी रही है और भट्टों की ब्रज। इन भाषाओं को डिंगल और पिंगल नाम भी मिले हैं। ये कवि प्राय: राजाओं के दरबारों में रहकर उनकी प्रशस्ति किया करते थे। अपने आश्रयदाता राजाओं की अतिरंजित प्रशंसा करते थे। श्रृंगार और वीर उनके मुख्य रस थे। इस समय की प्रख्यात रचनाओं में चंदबरदाई कृत पृथ्वीराज रासो, दलपति कृत खुमाण-रासो, नरपति-नाल्ह कृत बीसलदेव रासो, जगनिक कृत आल्ह खंड आदि मुख्य हैं। इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण पृथ्वीराज रासो है। इन सब ग्रंथों के बारे में आज यह सिद्ध हुआ है कि उनके कई अंश क्षेपक हैं।

प्रकीर्णक साहित्य

खड़ी बोली के आदि-कवि अमीर खुसरो इसी समय हुए हैं। खुसरो की पहेलियां और मुकरियां प्रख्यात हैं। मैथिल-कोकिल विद्यापति भी इसी समय के अंतर्गत हुए हैं। विद्यापति के मधुर पदों के कारण इन्हें 'अभिनव जयदेव' भी कहा जाता है। मैथिली और अवहट्ट में भी इनकी रचनाएं मिलती हैं। इनकी पदावली का मुख्य रस शृंगार माना गया है। अब्दुल रहमान कृत 'संदेश रासक' भी इसी समय की एक सुंदर रचना है। इस छोटे से प्रेम-संदेश-काव्य की भाषा अपभ्रंश से अत्यधिक प्रभावित होने से कुछ विद्वान इसको हिंदी की रचना न मानकर अपभ्रंश की रचना मानते हैं।

आश्रयदाताओं की अतिरंजित प्रशंसाएं, युद्धों का सुन्दर वर्णन, शृंगार-मिश्रित वीररस का आलेखन वगैरह इस साहित्य की प्रमुख विशेषताएं हैं। इस्लाम का भारत में प्रवेश हो चुका था। देशी रजवाड़े परस्पर कलह में व्यस्त थे। सब एक साथ मिलकर मुसलमानों के साथ लड़ने के लिए तैयार नहीं थे। परिणाम यह हुआ कि अलग-अलग सबको हराकर मुसलमान यहीं स्थिर हो गए। दिल्ली की गद्दी उन्होंने प्राप्त कर ली और क्रमशः उनके राज्य का विस्तार बढ़ने लगा। तत्कालीन कविता पर इस स्थिति का प्रभाव देखा जा सकता है।

हिन्दी का सर्वप्रथम कवि

हिन्दी का प्रथम कवि कौन है, इस पर मतैक्य नहीं है। विभिन्न इतिहासकारों के अनुसार हिंदी का पहला कवि निम्नलिखित हैं-

रामकुमार वर्मा के अनुसार – स्वयंभू (693 ई.)
राहुल सांकृत्यायन के अनुसार – सरहपा (769 ई.)
शिवसिंह सेंगर के अनुसार – पुष्पदन्त या पुण्ड (10 वीं शताब्दी)
चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' के अनुसार – राजा मुंज (993 ई.)
रामचंद्र शुक्ल के अनुसार – राजा मुंज व भोज (993 ई.)
गणपति चंद्र गुप्त के अनुसार – शालिभद्र सूरि (1184 ई.)
हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार–अब्दुल रहमान (13वीं शताब्दी)
बच्चन सिंह के अनुसार – विद्यापति (15वीं शताब्दी)

भक्ति काल

भक्ति काल क्या है में भक्ति काल अपना एक अहम और महत्वपूर्ण स्थान रखता है। आदिकाल के बाद आये इस युग को पूर्व मध्यकाल भी कहा जाता

है। जिसकी समयावधि संवत् 1343 ई. से संवत् 1643 ई. तक की मानी जाती है। यह हिंदी साहित्य (साहित्यिक दो प्रकार के हैं- धार्मिक साहित्य और लौकिक साहित्य) का श्रेष्ठ युग है। जिसको जॉर्ज ग्रियर्सन ने स्वर्णकाल, श्यामसुन्दर दास ने स्वर्णयुग, आचार्य राम चंद्र शुक्ल ने भक्ति काल एवं हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लोक जागरण कहा। सम्पूर्ण साहित्य के श्रेष्ठ कवि और उत्तम रचनाएं इसी युग में प्राप्त होती हैं।

दक्षिण में आलवार बंधु नाम से कई प्रख्यात भक्त हुए हैं। इनमें से कई तथाकथित नीची जातियों के भी थे। वे बहुत पढे-लिखे नहीं थे, परंतु अनुभवी थे। आलवारों के पश्चात दक्षिण में आचार्यों की एक परंपरा चली जिसमें रामानुजाचार्य प्रमुख थे।

रामानुजाचार्य की परंपरा में रामानंद हुए। उनका व्यक्तित्त्व असाधारण था। वे उस समय के सबसे बड़े आचार्य थे। उन्होंने भक्ति के क्षेत्र में ऊंच-नीच का भेद तोड़ दिया। सभी जातियों के अधिकारी व्यक्तियों को आपने शिष्य बनाया। उस समय का सूत्र हो गया–

जाति-पांति पूछे नहिं कोई।
हरि को भजै सो हरि का होई।।

रामानंद ने विष्णु के अवतार राम की उपासना पर बल दिया। रामानंद ने और उनकी शिष्य-मंडली ने दक्षिण की भक्तिगंगा का उत्तर में प्रवाह किया। समस्त उत्तर-भारत इस पुण्य-प्रवाह में बहने लगा। भारत भर में उस समय पहुंचे हुए संत और महात्मा भक्तों का आविर्भाव हुआ।

महाप्रभु वल्लभाचार्य ने पुष्टि-मार्ग की स्थापना की और विष्णु के कृष्णावतार की उपासना करने का प्रचार किया। उनके द्वारा जिस लीला-गान का उपदेश हुआ उसने देशभर को प्रभावित किया। अष्टछाप के सुप्रसिद्ध कवियों ने उनके उपदेशों को मधुर कविता में प्रतिबिंबित किया।

इसके उपरांत माध्व तथा निंबार्क संप्रदायों का भी जन-समाज पर प्रभाव पड़ा है। साधना-क्षेत्र में दो अन्य संप्रदाय भी उस समय विद्यमान थे। नाथों के योग-मार्ग से प्रभावित संत संप्रदाय चला जिसमें प्रमुख व्यक्तित्त्व संत कबीरदास का है। मुसलमान कवियों का सूफीवाद हिंदुओं के विशिष्टाद्वैतवाद से बहुत भिन्न नहीं है। कुछ भावुक मुसलमान कवियों द्वारा सूफीवाद से रंगी हुई उत्तम रचनाएं लिखी गई।

संक्षेप में भक्ति-युग की चार प्रमुख काव्य-धाराएं मिलती हैं–

सगुण भक्ति
रामाश्रयी शाखा
कृष्णाश्रयी शाखा
निर्गुण भक्ति
ज्ञानाश्रयी शाखा
प्रेमाश्रयी शाखा

भक्ति काल

हिंदी साहित्य का भक्तिकाल1375 वि0 से 1700 वि0 तक माना जाता है। यह युग भक्तिकाल के नाम से प्रख्यात है। यह हिंदी साहित्य का श्रेष्ठ युग है। समस्त हिंदी साहित्य के श्रेष्ठ कवि और उत्तम रचनाएं इस युग में प्राप्त होती हैं।

रामानुजाचार्य की परंपरा में रामानंद हुए। उनका व्यक्तित्त्व असाधारण था। वे उस समय के सबसे बड़े आचार्य थे। उन्होंने भक्ति के क्षेत्र में ऊंच-नीच का भेद तोड़ दिया। सभी जातियों के अधिकारी व्यक्तियों को आपने शिष्य बनाया। उस समय का सूत्र हो गया– जाति-पांति पूछे नहिं कोई। हरि को भजै सो हरि का होई।।

इसके उपरांत माध्व तथा निंबार्क संप्रदायों का भी जन-समाज पर प्रभाव पड़ा है। साधना-क्षेत्र में दो अन्य संप्रदाय भी उस समय विद्यमान थे। नाथों के योग-मार्ग से प्रभावित संत संप्रदाय चला जिसमें प्रमुख व्यक्तित्त्व संत कबीरदास का है। मुसलमान कवियों का सूफीवाद हिंदुओं के विशिष्टाद्वैतवाद से बहुत भिन्न नहीं है। कुछ भावुक मुसलमान कवियों द्वारा सूफीवाद से रंगी हुई उत्तम रचनाएं लिखी गईं। संक्षेप में भक्ति-युग की चार प्रमुख काव्य-धाराएं मिलती हैं–ज्ञानाश्रयी शाखा, प्रेमाश्रयी शाखा,,, कृष्णाश्रयी शाखा और रामाश्रयी शाखा, प्रथम दोनों धाराएं निर्गुण मत के अंतर्गत आती हैं, शेष दोनों सगुण मत के।

संत कवि

निर्गुण ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रमुख संत कवियों का परिचय कबीर, कमाल, रैदास या रविदास, धर्मदास, गुरू नानक, दादूदयाल, सुंदरदास, रज्जब, मलूकदास, अक्षर अनन्य, जंभनाथ, सिंगा जी, हरिदास निरंजनी।

परिचय

तेरहवीं सदी तक धर्म के क्षेत्र में बड़ी अस्तव्यस्तता आ गई। जनता में सिद्धों और योगियों आदि द्वारा प्रचलित अंधविश्वास फैल रहे थे, शास्त्र ज्ञानसंपन्न वर्ग में भी रूढ़ियों और आडंबर की प्रधानता हो चली थी। मायावाद के प्रभाव से लोकविमुखता और निष्क्रियता के भाव समाज में पनपने लगे थे। ऐसे समय में भक्ति आंदोलन के रूप में ऐसा भारतव्यापी विशाल सांस्कृतिक आंदोलन उठा जिसने समाज में उत्कर्षविधायक सामाजिक और वैयक्तिक मूल्यों की प्रतिष्ठा की।

भक्ति आंदोलन का आरंभ दक्षिण के आलवार संतों द्वारा दसवीं सदी के लगभग हुआ। वहाँ शंकराचार्य के अद्वैतमत और मायावाद के विरोध में चार वैष्णव संप्रदाय खड़े हुए। इन चारों संप्रदायों ने उत्तर भारत में विष्णु के अवतारों का प्रचार-प्रसार किया। इनमें से एक के प्रवर्तक रामानुजाचार्य थे, जिनकी शिष्य परंपरा में आने वाले रामानंद ने (पंद्रहवीं सदी) उत्तर भारत में रामभक्ति का प्रचार किया। रामानंद के राम ब्रह्म के स्थानापन्न थे जो राक्षसों का विनाश और अपनी लीला का विस्तार करने के लिए संसार में अवतीर्ण होते हैं। भक्ति के क्षेत्र में रामानंद ने ऊँच-नीच का भेदभाव मिटाने पर विशेष बल दिया। राम के सगुण और निर्गुण दो रूपों को मानने वाले दो भक्तों-कबीर और तुलसी को इन्होंने प्रभावित किया। विष्णुस्वामी के शुद्धाद्वैत मत का आधार लेकर इसी समय बल्लभाचार्य ने अपना पुष्टिमार्ग चलाया। बारहवीं से सोलहवीं सदी तक पूरे देश में पुराणसम्मत कृष्णचरित् के आधार पर कई संप्रदाय प्रतिष्ठित हुए, जिनमें सबसे ज्यादा प्रभावशाली वल्लभ का पुष्टिमार्ग था। उन्होंने शांकर मत के विरुद्ध ब्रह्म के सगुण रूप को ही वास्तविक कहा। उनके मत से यह संसार मिथ्या या माया का प्रसार नहीं है बल्कि ब्रह्म का ही प्रसार है, अतः सत्य है। उन्होंने कृष्ण को ब्रह्म का अवतार माना और उसकी प्राप्ति के लिए भक्त का पूर्ण आत्मसमर्पण आवश्यक बतलाया। भगवान् के अनुग्रह या पुष्टि के द्वारा ही भक्ति सुलभ हो सकती है। इस संप्रदाय में उपासना के लिए गोपीजनवल्लभ, लीलापुरुषोत्तम कृष्ण का मधुर रूप स्वीकृत हुआ। इस प्रकार उत्तर भारत में विष्णु के राम और कृष्ण अवतारों में प्रतिष्ठा हुई।

यद्यपि भक्ति का स्रोत दक्षिण से आया तथापि उत्तर भारत की नई परिस्थितियों में उसने एक नया रूप भी ग्रहण किया। मुसलमानों के इस देश में

बस जाने पर एक ऐसे भक्तिमार्ग की आवश्यकता थी जो हिंदू और मुसलमान दोनों को ग्राह्य हो। इसके अतिरिक्त निम्न वर्ग के लिए भी अधिक मान्य मत वही हो सकता था जो उन्हीं के वर्ग के पुरुष द्वारा प्रवर्तित हो। महाराष्ट्र के संत नामदेव ने 14वीं शताब्दी में इसी प्रकार के भक्तिमत का सामान्य जनता में प्रचार किया जिसमें भगवान् के सगुण और निर्गुण दोनों रूप गृहीत थे। कबीर के संत मत के ये पूर्वपुरुष हैं। दूसरी ओर सूफी कवियों ने हिंदुओं की लोककथाओं का आधार लेकर ईश्वर के प्रेममय रूप का प्रचार किया।

इस प्रकार इन विभिन्न मतों का आधार लेकर हिंदी में निर्गुण और सगुण के नाम से भक्तिकाव्य की दो शाखाएँ साथ-साथ चलीं। निर्गुणमत के दो उपविभाग हुए-ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी। पहले के प्रतिनिधि कबीर और दूसरे के जायसी हैं। सगुणमत भी दो उपधाराओं में प्रवाहित हुआ-रामभक्ति और कृष्णभक्ति। पहले के प्रतिनिधि तुलसी हैं और दूसरे के सूरदास।

भक्तिकाव्य की इन विभिन्न प्रणलियों की अपनी अलग अलग विशेषताएँ हैं पर कुछ आधारभूत बातों का सन्निवेश सब में है। प्रेम की सामान्य भूमिका सभी ने स्वीकार की। भक्तिभाव के स्तर पर मनुष्यमात्र की समानता सबको मान्य है। प्रेम और करुणा से युक्त अवतार की कल्पना तो सगुण भक्तों का आधार ही है पर निर्गुणोपासक कबीर भी अने राम को प्रिय, पिता और स्वामी आदि के रूप में स्मरण करते हैं। ज्ञान की तुलना में सभी भक्तों ने भक्तिभाव को गौरव दिया है। सभी भक्त कवियों ने लोकभाषा का माध्यम स्वीकार किया है।

ज्ञानश्रयी शाखा के प्रमुख कवि कबीर पर तात्कालिक विभिन्न धार्मिक प्रवृत्तियों और दार्शनिक मतों का सम्मिलित प्रभाव है। उनकी रचनाओं में धर्मसुधारक और समाजसुधारक का रूप विशेष प्रखर है। उन्होंने आचरण की शुद्धता पर बल दिया। बाह्याडंबर, रूढ़ियों और अंधविश्वासों पर उन्होंने तीव्र कशाघात किया। मनुष्य की क्षमता का उद्घोष कर उन्होंने निम्नश्रेणी की जनता में आत्मगौरव का भाव जगाया। इस शाखा के अन्य कवि रैदास, दादू हैं।

अपनी व्यक्तिगत धार्मिक अनुभूति और सामाजिक आलोचना द्वारा कबीर आदि संतों ने जनता को विचार के स्तर पर प्रभावित किया था। सूफी संतों ने अपने प्रेमाख्यानों द्वारा लोकमानस को भावना के स्तर पर प्रभावित करने का प्रयत्न किया। ज्ञानमार्गी संत कवियों की वाणी मुक्तकबद्ध है, प्रेममार्गी कवियों की प्रेमभावना लोकप्रचलित आख्यानों का आधार लेकर प्रबंधकाव्य के रूप में

ख्यायित हुई है। सूफी ईश्वर को अनंत प्रेम और सौंदर्य का भंडार मानते हैं। उनके अनुसार ईश्वर को जीव प्रेम के मार्ग से ही उपलब्ध कर सकता है। साधना के मार्ग में आनेवाली बाधाओं को वह गुरू या पीर की सहायता से साहसपूर्वक पार करके अपने परमप्रिय का साक्षात्कार करता है। सूफियों ने चाहे अपने मत के प्रचार के लिए अपने कथाकाव्य की रचना की हो पर साहित्यिक दृष्टि से उनका मूल्य इसलिए है कि उसमें प्रेम और उससे प्रेरित अन्य संवेगों की व्यंजना सहजबोध्य लौकिक भूमि पर हुई है। उनके द्वारा व्यंजित प्रेम ईश्वरोन्मुख है पर सामान्यत: यह प्रेम लौकिक भूमि पर ही संक्रमण करता है। परमप्रिय के सौंदर्य, प्रेमक्रीड़ा और प्रेमी के विरहोद्वेग आदि का वर्णन उन्होंने इतनी तन्मयता से किया है और उनके काव्य का मानवीय आधार इतना पुष्ट है कि आध्यात्मिक प्रतीकों और रूपकों के बावजूद उनकी रचनाएँ प्रेमसमर्पित कथाकाव्य की श्रेष्ठ कृतियाँ बन गई हैं। उनके काव्य का पूरा वातावरण लोकजीवन का और गार्हस्थिक है। प्रेमाख्यानकों की शैली फारसी के मसनवी काव्य जैसी है।

इस धारा के सर्वप्रमुख कवि जायसी हैं जिनका 'पदमावत' अपनी मार्मिक प्रेमव्यंजना, कथारस और सहज कलाविन्यास के कारण विशेष प्रशंसित हुआ है। इनकी अन्य रचनाओं में 'अखरावट' और 'आखिरी कलाम' आदि हैं, जिनमें सूफी संप्रदायसंगत बातें हैं1 इस धारा के अन्य कवि हैं कुतबन, मंझन, उसमान, शेख, नबी और नूरमुहम्मद आदि।

ज्ञानमार्गी शाखा के कवियों में विचार की प्रधानता है तो सूफियों की रचनाओं में प्रेम का एकांतिक रूप व्यक्त हुआ है। सगुण धारा के कवियों ने विचारात्मक शुष्कता और प्रेम की एकांगिता दूरकर जीवन के सहज उल्लासमय और व्यापक रूप की प्रतिष्ठा की। कृष्णभक्तिशाखा के कवियों ने आनंदस्वरूप लीलापुरुषोत्तम कृष्ण के मधुर रूप की प्रतिष्ठा कर जीवन के प्रति गहन राग को स्फूर्त किया। इन कवियों में सूरसागर के रचयिता महाकवि सूरदास श्रेष्ठतम हैं जिन्होंने कृष्ण के मधुर व्यक्तित्त्व का अनेक मार्मिक रूपों में साक्षात्कार किया। ये प्रेम और सौंदर्य के निसर्गसिद्ध गायक हैं। कृष्ण के बालरूप की जैसी विमोहक, सजीव और बहुविध कल्पना इन्होंने की है वह अपना सानी नहीं रखती। कृष्ण और गोपियों के स्वच्छंद प्रेमप्रसंगों द्वारा सूर ने मानवीय राग का बड़ा ही निश्छल और सहज रूप उद्घाटित किया है। यह प्रेम अपने सहज परिवेश में सहयोगी भाववृत्तियों से संपृक्त होकर विशेष अर्थवान् हो गया है। कृष्ण के प्रति उनका संबंध मुख्यत: सख्यभाव का है। आराध्य के प्रति उनका सहज समर्पण

भावना की गहरी से गहरी भूमिकाओं को स्पर्श करनेवाला है। सूरदास वल्लभाचार्य के शिष्य थे। वल्लभ के पुत्र बिट्ठलनाथ ने कृष्णलीलागान के लिए अष्टछाप के नाम से आठ कवियों का निर्वाचन किया था। सूरदास इस मंडल के सर्वोत्कृष्ट कवि हैं। अन्य विशिष्ट कवि नंददास और परमानंददास हैं। नंददास की कलाचेतना अपेक्षाकृत विशेष मुखर है।

मध्ययुग में कृष्णभक्ति का व्यापक प्रचार हुआ और वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग के अतिरिक्त अन्य भी कई संप्रदाय स्थापित हुए, जिन्होंने कृष्णकाव्य को प्रभावित किया। हितहरिवंश (राधावल्लभी संप्र.), हरिदास (टट्टी संप्र.), गदाधर भट्ट और सूरदास मदनमोहन (गौड़ीय संप्र.) आदि अनेक कवियों ने विभिन्न मतों के अनुसार कृष्णप्रेम की मार्मिक कल्पनाएँ कीं। मीरा की भक्ति दांपत्यभाव की थी जो अपने स्वत:स्फूर्त कोमल और करुण प्रेमसंगीत से आंदोतिल करती हैं। नरोत्तमदास, रसखान, सेनापति आदि इस धारा के अन्य अनेक प्रतिभाशाली कवि हुए जिन्होंने हिंदी काव्य को समृद्ध किया। यह सारा कृष्णकाव्य मुक्तक या कथाश्रित मुक्तक है। संगीतात्मकता इसका एक विशिष्ट गुण है।

कृष्णकाव्य ने भगवान् के मधुर रूप का उद्घाटन किया पर उसमें जीवन की अनेकरूपता नहीं थी, जीवन की विविधता और विस्तार की मार्मिक योजना रामकाव्य में हुई। कृष्णभक्तिकाव्य में जीवन के माधुर्य पक्ष का स्फूर्तिप्रद संगीत था, रामकाव्य में जीवन का नीतिपक्ष और समाजबोध अधिक मुखरित हुआ। एक ने स्वच्छंद रागतत्त्व को महत्व दिया तो दूसरे ने मर्यादित लोकचेतना पर विशेष बल दिया। एक ने भगवान की लोकरंजनकारी सौंदर्यप्रतिमा का संगठन किया तो दूसरे ने उसके शक्ति, शील और सौंदर्यमय लोकमंगलकारी रूप को प्रकाशित किया। रामकाव्य का सर्वोत्कृष्ट वैभव 'रामचरितमानस' के रचयिता तुलसीदास के काव्य में प्रकट हुआ जो विद्याविद् ग्रियर्सन की दृष्टि में बुद्धदेव के बाद के सबसे बड़े जननायक थे। पर काव्य की दृष्टि से तुलसी का महत्व भगवान् के एक ऐसे रूप की परिकल्पना में है, जो मानवीय सामर्थ्य और औदात्य की उच्चतम भूमि पर अधिष्ठित है। तुलसी के काव्य की एक बड़ी विशेषता उनकी बहुमुखी समन्वयभावना है, जो धर्म, समाज और साहित्य सभी क्षेत्रों में सक्रिय है। उनका काव्य लोकोन्मुख है। उसमें जीवन की विस्तीर्णता के साथ गहराई भी है। उनका महाकाव्य रामचरितमानस राम के संपूर्ण जीवन के माध्यम से व्यक्ति और लोकजीवन के विभिन्न पक्षों का उद्घाटन करता है। उसमें भगवान् राम के

लोकमंगलकारी रूप की प्रतिष्ठा है। उनका साहित्य सामाजिक और वैयक्तिक कर्तव्य के उच्च आदर्शों में आस्था दृढ़ करनेवाला है। तुलसी की 'विनयपत्रिका' में आराध्य के प्रति, जो कवि के आदर्शों का सजीव प्रतिरूप है, उनका निरंतर और निश्छल समर्पणभाव, काव्यात्मक आत्माभिव्यक्ति का उत्कृष्ट दृष्टांत है। काव्याभिव्यक्ति के विभिन्न रूपों पर उनका समान अधिकार है। अपने समय में प्रचलित सभी काव्यशैलियों का उन्होंने सफल प्रयोग किया। प्रबंध और मुक्तक की साहित्यिक शैलियों के अतिरिक्त लोकप्रचलित अवधी और ब्रजभाषा दोनों के व्यवहार में वे समान रूप से समर्थ हैं। तुलसी के अतिरिक्त रामकाव्य के अन्य रचयिताओं में अग्रदास, नाभादास, प्राणचंद चौहान और हृदयराम आदि उल्लेख्य हैं।

आज की दृष्टि से इस संपूर्ण भक्तिकाव्य का महत्व उसक धार्मिकता से अधिक लोकजीवनगत मानवीय अनुभूतियों और भावों के कारण है। इसी विचार से भक्तिकाल को हिंदी काव्य का स्वर्ण युग कहा जा सकता है।

कृष्णाश्रयी शाखा

इस गुण की इस शाखा का सर्वाधिक प्रचार हुआ है। विभिन्न संप्रदायों के अंतर्गत उच्च कोटि के कवि हुए हैं। इनमें वल्लभाचार्य के पुष्टि-संप्रदाय के अंतर्गत अष्टछाप के सूरदास कुम्भनदास रसखान जैसे महान कवि हुए हैं। वात्सल्य एवं शृंगार के सर्वोत्तम भक्त-कवि सूरदास के पदों का परवर्ती हिंदी साहित्य पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ा है। इस शाखा के कवियों ने प्रायः मुक्तक काव्य ही लिखा है। भगवान श्रीकृष्ण का बाल एवं किशोर रूप ही इन कवियों को आकर्षित कर पाया है इसलिए इनके काव्यों में श्रीकृष्ण के ऐश्वर्य की अपेक्षा माधुर्य का ही प्राधान्य रहा है। प्रायः सब कवि गायक थे इसलिए कविता और संगीत का अद्‌भुत सुंदर समन्वय इन कवियों की रचनाओं में मिलता है। गीति-काव्य की जो परंपरा जयदेव और विद्यापति द्वारा पल्लवित हुई थी उसका चरम-विकास इन कवियों द्वारा हुआ है। नर-नारी की साधारण प्रेम-लीलाओं को राधा-कृष्ण की अलौकिक प्रेमलीला द्वारा व्यंजित करके उन्होंने जन-मानस को रसाप्लावित कर दिया। आनंद की एक लहर देश भर में दौड गई। इस शाखा के प्रमुख कवि थे सूरदास, नंददास, मीरा बाई, हितहरिवंश, हरिदास, रसखान, नरोत्तमदास वगैरह। रहीम भी इसी समय हुए।

कृष्ण-काव्य-धारा की विशेषताएँ

कृष्ण-काव्य-धारा के मुख्य प्रवर्तक हैं- श्री वल्लभाचार्य। उन्होंने निम्बार्क, मध्व और विष्णुस्वामी के आदर्शों को सामने रखकर श्रीकृष्ण का प्रचार किया। श्री वल्लभाचार्य द्वारा प्रचारित पुष्टिमार्ग में दीक्षित होकर सूरदास आदि अष्टछाप के कवियों ने कृष्ण-भक्ति-साहित्य की रचना की। वल्लभाचार्य ने पुष्टिमार्ग का प्रचार-प्रसार किया। जिसका अर्थ है- भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति से उनकी कृपा और अनुग्रह की प्राप्ति करना।

कृष्ण-काव्य-धारा की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं -

1. श्रीकृष्ण-साहित्य का मुख्य विषय कृष्ण की लीलाओं का गान करना है। वल्लभाचार्य के सिद्धांतो से प्रभावित होकर इस शाखा के कवियों ने कृष्ण की बाल-लीलाओं का ही अधिक वर्णन किया है। सूरदास इसमें प्रमुख हैं।
2. इस शाखा में वात्सल्य एवं माधुर्य भाव का ही प्राधान्य है। वात्सल्य भाव के अंतर्गत कृष्ण की बाल-लीलाओं, चेष्टाओं तथा माँ यशोदा के हृदय की झाँकी मिलती है। माधुर्य भाव के अंतर्गत गोपी-लीला मुख्य है। सूरदास के बारे में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है- वात्सल्य के क्षेत्र में जितना अधिक उद्‌घाटन सूर ने अपनी बंद आँखों से किया, इतना किसी और कवि ने नहीं। इन क्षेत्रों का तो वे कोना-कोना झाँक आये।
3. इस धारा के कवियों ने भगवान कृष्ण की उपासना माधुर्य एवं सख्य भाव से की है। इसीलिए इसमें मर्यादा का चित्रण नहीं मिलता।
4. श्रीकृष्ण काव्य में मुक्त रचनाएँ ही अधिक पाई जाती हैं। काव्य-रचना के अधिकांशत: उन्होंने पद ही चुने हैं।
5. इस काव्य में गीति-काव्य की मनोहारिणी छटा है। इसका कारण है- कृष्ण-काव्य की संगीतात्मक्ता। कृष्ण-काव्य में राग-रागिनियों का सुंदर उपयोग हुआ है।
6. श्रीकृष्ण काव्य में विषय की एकता होने के कारण भावों में अधिकतर एकरूपता पाई जाती है।
7. श्रीकृष्ण को भगवान मानकर पदों की विनयावली द्वारा पूजा जाने के कारण इसमें भावुकता की तीव्रता अधिक पाई जाती है।
8. इस काव्य-धारा में उपमा, रूपक तथा उत्प्रेक्षा अलंकारों का प्रयोग किया गया है।

9. कृष्ण-काव्य-धारा की भाषा ब्रज है। ब्रजभाषा की कोमलकांत पदावली का प्रयोग इसमें हुआ है। यह मधुर और सरस है।
10. इस काव्य में रसमयी उक्तियों के लिए तथा साकार ईश्वर के प्रतिपादन के लिए भ्रमरगीत लिखने की परंपरा प्राप्त होती है।
11. श्रीकृष्ण-काव्य स्वतंत्र प्रेम-प्रधान काव्य है। इन्होंने प्रेमलक्षणा भक्ति को अपनाया है। इसलिए इसमें मर्यादा की अवहेलना की गई है।
12. कृष्ण-काव्य व्यंग्यात्मक है। इसमें उपालंभ की प्रधानता है। सूर का भ्रमरगीत इसका सुंदर उदाहरण है।
13. श्रीकृष्ण काव्य में लोक-जीवन के प्रति उपेक्षा की भावना पाई जाती है। इसका मुख्य कारण है- कृष्ण के लोकरंजक रूप की प्रधानता।
14. श्री कृष्ण-काव्य-धारा में ज्ञान और कर्म के स्थान पर भक्ति को प्रधानता दी गई है। इसमें आत्म-चिंतन की अपेक्षा आत्म-समर्पण का महत्व है।
15. प्रकृति-वर्णन भी इस धारा में मिलता है। ग्राम्य-प्रकृति के सुंदर चित्र इसमें हैं।

रामाश्रयी शाखा

कृष्णभक्ति शाखा के अंतर्गत लीला-पुरुषोत्तम का गान रहा तो रामभक्ति शाखा के प्रमुख कवि तुलसीदास ने मर्यादा-पुरुषोत्तम का ध्यान करना चाहा। इसलिए आपने रामचंद्र को आराध्य माना और 'रामचरित मानस' द्वारा राम-कथा को घर-घर में पहुंचा दिया। तुलसीदास हिंदी साहित्य के श्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। समन्वयवादी तुलसीदास में लोकनायक के सब गुण मौजूद थे। आपकी पावन और मधुर वाणी ने जनता के तमाम स्तरों को राममय कर दिया। उस समय प्रचलित तमाम भाषाओं और छंदों में आपने रामकथा लिख दी। जन-समाज के उत्थान में आपने सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य किया है। इस शाखा में अन्य कोई कवि तुलसीदास के समान उल्लेखनीय नहीं है तथापि अग्रदास, नाभादास तथा प्राण चन्द चौहान भी इस श्रेणी में आते हैं।

रामभक्ति शाखा की प्रवृत्तियाँ रामकाव्य धारा का प्रवर्तन वैष्णव संप्रदाय के स्वामी रामानंद से स्वीकार किया जा सकता है। यद्यपि रामकाव्य का आधार संस्कृत साहित्य में उपलब्ध राम-काव्य और नाटक रहें हैं। इस काव्य धारा के अवलोकन से इसकी निम्न विशेषताएँ दिखाई पड़ती हैं –

राम का स्वरूप–रामानुजाचार्य की शिष्य परम्परा में श्री रामानंद के अनुयायी सभी रामभक्त कवि विष्णु के अवतार दशरथ-पुत्र राम के उपासक हैं। अवतारवाद में विश्वास है। उनके राम परब्रह्म स्वरूप हैं। उनमें शील, शक्ति और सौंदर्य का समन्वय है। सौंदर्य में वे त्रिभुवन को लजावन हारे हैं। शक्ति से वे दुष्टों का दमन और भक्तों की रक्षा करते हैं तथा गुणों से संसार को आचार की शिक्षा देते हैं। वे मर्यादापुरुषोत्तम और लोकरक्षक हैं।

भक्ति का स्वरूप–इनकी भक्ति में सेवक-सेव्य भाव है। वे दास्य भाव से राम की आराधना करते हैं। वे स्वयं को क्षुद्रातिक्षुद्र तथा भगवान को महान बतलाते हैं। तुलसीदास ने लिखा है–सेवक-सेव्य भाव बिन भव न तरिय उरगारि। राम-काव्य में ज्ञान, कर्म और भक्ति की पृथक-पृथक महत्ता स्पष्ट करते हुए भक्ति को उत्कृष्ट बताया गया है। तुलसी दास ने भक्ति और ज्ञान में अभेद माना है–भगतहिं ज्ञानहिं नहिं कुछ भेदा। यद्यपि वे ज्ञान को कठिन मार्ग तथा भक्ति को सरल और सहज मार्ग स्वीकार करते हैं। इसके अतिरिक्त तुलसी की भक्ति का रूप वैधी रहा है, वह वेदशास्त्र की मर्यादा के अनुकूल है।

लोक-मंगल की भावना–रामभक्ति साहित्य में राम के लोक-रक्षक रूप की स्थापना हुई है। तुलसी के राम मर्यादापुरुषोत्तम तथा आदर्शों के संस्थापक हैं। इस काव्य धारा में आदर्श पात्रों की सर्जना हुई है। राम आदर्श पुत्र और आदर्श राजा हैं, सीता आदर्श पत्नी हैं तो भरत और लक्ष्मण आदर्श भाई हैं। कौशल्या आदर्श माता हैं, हनुमान आदर्श सेवक हैं। इस प्रकार रामचरितमानस में तुलसी ने आदर्श गृहस्थ, आदर्श समाज और आदर्श राज्य की कल्पना की है। आदर्श की प्रतिष्ठा से ही तुलसी लोकनायक कवि बन गए हैं और उनका काव्य लोकमंगल की भावना से ओतप्रोत है।

समन्वय भावना–तुलसी का मानस समन्वय की विराट चेष्टा है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में-उनका सारा काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है। लोक और शास्त्र का समन्वय, गार्हस्थ्य और वैराग्य का समन्वय, भक्ति और ज्ञान का समन्वय, भाषा और संस्कृत का समन्वय, निर्गुण और सगुण का समन्वय, पांडित्य और अपांडित्य का समन्वय रामचरितमानस में शुरु से आखिर तक समन्वय का काव्य है। हम कह सकते हैं कि तुलसी आदि रामभक्त कवियों ने समाज, भक्ति और साहित्य सभी क्षेत्रों में समन्वयवाद का प्रचार किया है। राम भक्त कवियों की भारतीय संस्कृति में पूर्ण आस्था रही। पौराणिकता इनका आधार

है और वर्णाश्रम व्यवस्था के पोषक हैं। लोकहित के साथ-साथ इनकी भक्ति स्वांतः सुखाय थी। सामाजिक तत्त्व की प्रधानता रही।

काव्य शैलियाँ—रामकाव्य में काव्य की प्रायः सभी शैलियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। तुलसीदास ने अपने युग की प्रायः सभी काव्य-शैलियों को अपनाया है। वीरगाथाकाल की छप्पय पद्धति, विद्यापति और सूर की गीतिपद्धति, गंग आदि भाट कवियों की कवित्त-सवैया पद्धति, जायसी की दोहा पद्धति, सभी का सफलतापूर्वक प्रयोग इनकी रचनाओं में मिलता है। रामायण महानाटक (प्राणचंद चौहान) और हनुमननाटक (हृदयराम) में संवाद पद्धति और केशव की रामचंद्रिका में रीति-पद्धति का अनुसरण है।

रस—रामकाव्य में नव रसों का प्रयोग है। राम का जीवन इतना विस्तृत व विविध है कि उसमें प्रायः सभी रसों की अभिव्यक्ति सहज ही हो जाती है। तुलसी के मानस एवं केशव की रामचंद्रिका में सभी रस देखे जा सकते हैं। रामभक्ति के रसिक संप्रदाय के काव्य में शृंगार रस को प्रमुखता मिली है। मुख्य रस यद्यपि शांत रस ही रहा।

भाषा—रामकाव्य में मुख्यतः अवधी भाषा प्रयुक्त हुई है। किंतु ब्रजभाषा भी इस काव्य का शृंगार बनी है। इन दोनों भाषाओं के प्रवाह में अन्य भाषाओं के भी शब्द आ गए हैं। बुंदेली, भोजपुरी, फारसी तथा अरबी शब्दों के प्रयोग यत्र-तत्र मिलते हैं। रामचरितमानस की अवधी प्रेमकाव्य की अवधी भाषा की अपेक्षा अधिक साहित्यिक है।

छंद—रामकाव्य की रचना अधिकतर दोहा-चौपाई में हुई है। दोहा चौपाई प्रबंधात्मक काव्यों के लिए उत्कृष्ट छंद हैं। इसके अतिरिक्त कुण्डलिया, छप्पय, कवित्त, सोरठा, तोमर, त्रिभंगी आदि छंदों का प्रयोग हुआ है।

अलंकार—रामभक्त कवि विद्वान पंडित हैं। इन्होंने अलंकारों की उपेक्षा नहीं की। तुलसी के काव्य में अलंकारों का सहज और स्वाभाविक प्रयोग मिलता है। उत्प्रेक्षा, रूपक और उपमा का प्रयोग मानस में अधिक है।

ज्ञानाश्रयी मार्गी

इस शाखा के भक्त-कवि निर्गुणवादी थे और राम की उपासना करते थे। वे गुरू को बहुत सम्मान देते थे तथा जाति-पाँति के भेदों को अस्वीकार करते थे। वैयक्तिक साधना पर वे बल देते थे। मिथ्या आडंबरों और रूढियों का वे विरोध करते थे। लगभग सब संत अपढ़ थे परंतु अनुभव की दृष्टि से समृद्ध थे।

प्राय: सब सत्संगी थे और उनकी भाषा में कई बोलियों का मिश्रण पाया जाता है इसलिए इस भाषा को 'सधुक्कड़ी' कहा गया है। साधारण जनता पर इन संतों की वाणी का जबरदस्त प्रभाव पड़ा है। इन संतों में प्रमुख कबीरदास थे। अन्य मुख्य संत-कवियों के नाम हैं-नानक, रैदास, दादूदयाल, सुंदरदास तथा मलूकदास।

प्रोफेसर महावीर सरन जैन ने निर्गुण भक्ति के स्वरूप के बारे में प्रश्न उठाए हैं तथा प्रतिपादित किया है कि संतों की निर्गुण भक्ति का अपना स्वरूप है जिसको वेदांत दर्शन के सन्दर्भ में व्याख्यायित नहीं किया जा सकता। उनके शब्द हैं–

भक्ति या उपासना के लिए गुणों की सत्ता आवश्यक है। ब्रह्म के सगुण स्वरूप को आधार बनाकर तो भक्ति/उपासना की जा सकती है किन्तु जो निर्गुण एवं निराकार है उसकी भक्ति किस प्रकार सम्भव है ? निर्गुण के गुणों का आख्यान किस प्रकार किया जा सकता है ? गुणातीत में गुणों का प्रवाह किस प्रकार माना जा सकता है? जो निरालम्ब है, उसको आलम्बन किस प्रकार बनाया जा सकता है। जो अरूप है, उसके रूप की कल्पना किस प्रकार सम्भव है। जो रागातीत है, उसके प्रति रागों का अर्पण किस प्रकार किया जा सकता है? रूपातीत से मिलने की उत्कंठा का क्या औचित्य हो सकता है। जो नाम से भी अतीत है, उसके नाम का जप किस प्रकार किया जा सकता है।

शास्त्रीय दृष्टि से उपर्युक्त सभी प्रश्न 'निर्गुण-भक्ति' के स्वरूप को ताल ठोंककर चुनौती देते हुए प्रतीत होते हैं। कबीर आदि संतों की दार्शनिक विवेचना करते समय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने यह मान्यता स्थापित की है कि उन्होंने निराकार ईश्वर के लिए भारतीय वेदांत का पल्ला पकड़ा है। इस सम्बन्ध में जब हम शांकर अद्वैतवाद एवं संतों की निर्गुण भक्ति के तुलनात्मक पक्षों पर विचार करते हैं तो उपर्युक्त मान्यता की सीमायें स्पष्ट हो जाती हैं–

(क) शांकर अद्वैतवाद में भक्ति को साधन के रूप में स्वीकार किया गया है, किन्तु उसे साध्य नहीं माना गया है। संतों ने (सूफियों ने भी) भक्ति को साध्य माना है।

(ख) शांकर अद्वैतवाद में मुक्ति के प्रत्यक्ष साधन के रूप में 'ज्ञान' को ग्रहण किया गया है। वहाँ मुक्ति के लिए भक्ति का ग्रहण अपरिहार्य नहीं है। वहाँ भक्ति के महत्व की सीमा प्रतिपादित है। वहाँ भक्ति का महत्व केवल इस दृष्टि से है कि वह अन्त:करण के मालिन्य का प्रक्षालन करने में समर्थ सिद्ध होती है। भक्ति आत्म-साक्षात्कार

नहीं करा सकती, वह केवल आत्म साक्षात्कार के लिए उचित भूमिका का निर्माण कर सकती है। संतों ने अपना चरम लक्ष्य आत्म साक्षात्कार या भगवद्-दर्शन माना है तथा भक्ति के ग्रहण को अपरिहार्य रूप में स्वीकार किया है क्योंकि संतों की दृष्टि में भक्ति ही आत्म-साक्षात्कार या भगवद्दर्शन कराती है।

प्रेमाश्रयी शाखा

मुसलमान सूफी कवियों की इस समय की काव्य-धारा को प्रेममार्गी माना गया है क्योंकि प्रेम से ईश्वर प्राप्त होते हैं ऐसी उनकी मान्यता थी। ईश्वर की तरह प्रेम भी सर्वव्यापी तत्त्व है और ईश्वर का जीव के साथ प्रेम का ही संबंध हो सकता है, यह उनकी रचनाओं का मूल तत्त्व है। उन्होंने प्रेमगाथाएं लिखी हैं। ये प्रेमगाथाएं फारसी की मसनवियों की शैली पर रची गई हैं। इन गाथाओं की भाषा अवधी है और इनमें दोहा-चौपाई छंदों का प्रयोग हुआ है। मुसलमान होते हुए भी उन्होंने हिंदू-जीवन से संबंधित कथाएं लिखी हैं। खंडन-मंडन में न पड़कर इन फकीर कवियों ने भौतिक प्रेम के माध्यम से ईश्वरीय प्रेम का वर्णन किया है। ईश्वर को माशूक माना गया है और प्रायः प्रत्येक गाथा में कोई राजकुमार किसी राजकुमारी को प्राप्त करने के लिए नानाविध कष्टों का सामना करता है, विविध कसौटियों से पार होता है और तब जाकर माशूक को प्राप्त कर सकता है। इन कवियों में मलिक मुहम्मद जायसी प्रमुख हैं। आपका 'पद्मावत' महाकाव्य इस शैली की सर्वश्रेष्ठ रचना है। अन्य कवियों में प्रमुख हैं-मंझन, कुतुबन और उसमान।

रीति काल

स्रोतहीन

सन् 1700 ई.(1757 विक्रमी संवत) के आसपास हिंदी कविता में एक नया मोड़ आया। इसे विशेषतः तात्कालिक दरबारी संस्कृति और संस्कृत साहित्य से उत्तेजना मिली। संस्कृत साहित्यशास्त्र के कतिपय अंशों ने उसे शास्त्रीय अनुशासन की ओर प्रवृत्त किया। हिंदी में 'रीति' या 'काव्यरीति' शब्द का प्रयोग काव्यशास्त्र के लिए हुआ था। इसलिए काव्यशास्त्रबद्ध सामान्य सृजनप्रवृत्ति और रस, अलंकार आदि के निरूपक बहुसंख्यक लक्षणग्रंथों को ध्यान में रखते हुए

इस समय के काव्य को 'रीतिकाव्य' कहा गया। इस काव्य की शृंगारी प्रवृत्तियों की पुरानी परंपरा के स्पष्ट संकेत संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, फारसी और हिंदी के आदिकाव्य तथा कृष्णकाव्य की शृंगारी प्रवृत्तियों में मिलते हैं।

इस काल में कई कवि ऐसे हुए हैं, जो आचार्य भी थे और जिन्होंने विविध काव्यांगों के लक्षण देने वाले ग्रंथ भी लिखे। इस युग में शृंगार की प्रधानता रही। यह युग मुक्तक-रचना का युग रहा। मुख्यतया कवित्त, सवैये और दोहे इस युग में लिखे गए।

राजा-महाराजा और आश्रयदाता अब केवल काव्यों को पढ़ और सुनकर ही संतुष्ट नहीं होते थे, बल्कि अब वह स्वयं काव्य रचना करना चाहते थे। इस समय पर कवियों ने आचार्य का कर्तव्य निभाया।

कवि राजाश्रित होते थे इसलिए इस युग की कविता अधिकतर दरबारी रही जिसके फलस्वरूप इसमें चमत्कारपूर्ण व्यंजना की विशेष मात्रा तो मिलती है परंतु कविता साधारण जनता से विमुख भी हो गई।

रीतिकाल के अधिकांश कवि दरबारी थे। केशवदास (ओरछा), प्रताप सिंह (चरखारी), बिहारी (जयपुर, आमेर), मतिराम (बूँदी), भूषण (पन्ना), चिंतामणि (नागपुर), देव (पिहानी), भिखारीदास (प्रतापगढ़-अवध), रघुनाथ (काशी), बेनी (किशनगढ़), गंग (दिल्ली), टीकाराम (बड़ौदा), ग्वाल (पंजाब), चन्द्रशेखर बाजपेई (पटियाला), हरनाम (कपूरथला), कुलपति मिश्र (जयपुर), नेवाज (पन्ना), सुरति मिश्र (दिल्ली), कवीन्द्र उदयनाथ (अमेठी), ऋषिनाथ (काशी), रतन कवि (श्रीनगर-गढ़वाल), बेनी बन्दीजन (अवध), बेनी प्रवीन (लखनऊ), ब्रह्मदत्त (काशी), ठाकुर बुन्देलखण्डी (जैतपुर), बोधा (पन्ना), गुमान मिश्र (पिहानी) आदि और अनेक कवि तो राजा ही थे, जैसे- महाराज जसवन्त सिंह (तिर्वा), भगवन्त राय खीची, भूपति, रसनिधि (दतिया के जमींदार), महाराज विश्वनाथ, द्विजदेव (महाराज मानसिंह)।

रीतिकाव्य रचना का आरंभ एक संस्कृतज्ञ ने किया। ये थे आचार्य केशवदास, जिनकी सर्वप्रसिद्ध रचनाएँ कविप्रिया, रसिकप्रिया और रामचंद्रिका हैं। कविप्रिया में अलंकार और रसिकप्रिया में रस का सोदाहरण निरूपण है। लक्षण दोहों में और उदाहरण कवित्तसवैए में हैं। लक्षण-लक्ष्य-ग्रंथों की यही परंपरा रीतिकाव्य में विकसित हुई। रामचंद्रिका केशव का प्रबंधकाव्य है जिसमें भक्ति की तन्मयता के स्थान पर एक सजग कलाकार की प्रखर कलाचेतना प्रस्फुटित हुई। केशव के कई दशक बाद चिंतामणि से लेकर अठारहवीं सदी तक हिंदी

में रीतिकाव्य का अजस्र स्रोत प्रवाहित हुआ जिसमें नर-नारी-जीवन के रमणीय पक्षों और तत्संबंधी सरस संवेदनाओं की अत्यंत कलात्मक अभिव्यक्ति व्यापक रूप में हुई। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रीतिकाव्य का शुरूआत केशवदास से न मानकर चिन्तामणि से माना है। उनका कहना है कि-'केशवदास जी ने काव्य के सब अंगों का निरूपण शास्त्रीय पद्धति पर किया। यह नि:सन्देह है कि काव्यरीति का सम्यक समावेश पहले पहल ऑ.केशव ने ही किया। हिन्दी में रीतिग्रन्थों की अविरल और अखंडित परम्परा का प्रवाह केशव की 'कविप्रिया' के प्राय: पचास वर्ष पीछे चला और वह भी एक भिन्न आदर्श को लेकर केशव के आदर्श को लेकर नहीं।' वे कहते है कि-'हिन्दी रीतिग्रन्थो की अखण्ड परम्परा चिन्तामणि त्रि. से चली, अत: रीतिकाल का आरम्भ उन्हीं से मानना चाहिए।'

परिचय

रीतिकाल के कवि राजाओं और रईसों के आश्रय में रहते थे। वहाँ मनोरंजन और कलाविलास का वातावरण स्वाभाविक था। बौद्धिक आनंद का मुख्य साधन वहाँ उक्तिवैचित्रय समझा जाता था। ऐसे वातावरण में लिखा गया साहित्य अधिकतर शृंगारमूलक और कलावैचित्र्य से युक्त था। पर इसी समय प्रेम के स्वच्छंद गायक भी हुए जिन्होंने प्रेम की गहराइयों का स्पर्श किया है। मात्रा और काव्यगुण दोनों ही दृष्टियों से इस समय का नर-नारी-प्रेम और सौंदर्य की मार्मिक व्यंजना करनेवाला काव्यसाहित्य महत्वपूर्ण है।

इस समय वीरकाव्य भी लिखा गया। मुगल शासक औरंगजेब की कट्टर सांप्रदायिकता और आक्रामक राजनीति की टकराहट से इस काल में जो विक्षोभ की स्थितियाँ आईं उन्होंने कुछ कवियों को वीरकाव्य के सृजन की भी प्रेरणा दी। ऐसे कवियों में भूषण प्रमुख हैं जिन्होंने रीतिशैली को अपनाते हुए भी वीरों के पराक्रम का ओजस्वी वर्णन किया। इस समय नीति, वैराग्य और भक्ति से संबंधित काव्य भी लिखा गया। अनेक प्रबंधकाव्य भी निर्मित हुए। इधर के शोधकार्य में इस समय की शृंगारेतर रचनाएँ और प्रबंधकाव्य प्रचुर परिमाण में मिल रहे हैं। इसलिए रीतिकालीन काव्य को नितांत एकांगी और एकरूप समझना उचित नहीं है। इस समय के काव्य में पूर्ववर्ती कालों की सभी प्रवृत्तियाँ सक्रिय हैं। यह प्रधान धारा शृंगारकाव्य की है, जो इस समय की काव्यसंपत्ति का वास्तविक निदर्शक मानी जाती रही है। शृंगारी काव्य तीन वर्गों में विभाजित

किया जाता है। पहला वर्ग रीतिबद्ध कवियों का है जिसके प्रतिनिधि केशव, चिंतामणि, भिखारीदास, देव, मतिराम और पद्माकर आदि हैं। इन कवियों ने दोहों में रस, अलंकार और नायिका के लक्षण देकर कवित्त सवैए में प्रेम और सौंदर्य की कलापूर्ण मार्मिक व्यंजना की है। संस्कृत साहित्यशास्त्र में निरूपित शास्त्रीय चर्चा का अनुसरण मात्र इनमें अधिक है। पर कुछ ने थोड़ी मौलिकता भी दिखाई है, जैसे भिखारीदास का हिंदी छंदों का निरूपण। दूसरा वर्ग रीतिसिद्ध कवियों का है। इन कवियों ने लक्षण नहीं निरूपित किए, केवल उनके आधार पर काव्यरचना की। बिहारी इनमें सर्वश्रेष्ठ हैं, जिन्होंने दोहों में अपनी 'सतसई' प्रस्तुत की। विभिन्न मुद्राओंवाले अत्यंत व्यंजक सौंदर्यचित्रों और प्रेम की भावदशाओं का अनुपम अंकन इनके काव्य में मिलता है। तीसरे वर्ग में घनानंद, बोधा, द्विजदेव ठाकुर आदि रीतिमुक्त कवि आते हैं जिन्होंने स्वच्छंद प्रेम की अभिव्यक्ति की है। इनकी रचनाओं में प्रेम की तीव्रता और गहनता की अत्यंत प्रभावशाली व्यंजना हुई है।

रीतिकाव्य मुख्यतः मांसल शृंगार का काव्य है। इसमें नर-नारीजीवन के रमणीय पक्षों का सुंदर उद्घाटन हुआ है। अधिक काव्य मुक्तक शैली में है, पर प्रबंधकाव्य भी हैं। इन दो सौ वर्षों में शृंगारकाव्य का अपूर्व उत्कर्ष हुआ। पर धीरे-धीरे रीति की जकड़ बढ़ती गई और हिंदी काव्य का भावक्षेत्र संकीर्ण होता गया। आधुनिक युग तक आते-आते इन दोनों कमियों की ओर साहित्यकारों का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट हुआ।

इतिहास साक्षी है कि अपने पराभव काल में भी यह युग वैभव विकास का था। मुगल दरबार के हरम में पाँच-पाँच हजार रूपसियाँ रहती थीं। मीना बाजार लगते थे, सुरा-सुन्दरी का उन्मुक्त व्यापार होता था। डॉ. नगेन्द्र लिखते हैं- 'वासना का सागर ऐसे प्रबल वेग से उमड़ रहा था कि शुद्धिवाद सम्राट के सभी निषेध प्रयत्न उसमें बह गये। अमीर-उमराव ने उसके निषेध पत्रों को शराब की सुराही में गर्क कर दिया। विलास के अन्य साधन भी प्रचुर मात्रा में थे।' पद्माकर ने एक ही छन्द में तत्कालीन दरबारों की रूपरेखा का अंकन कर दिया है-

गुलगुली गिल में गलीचा हैं, गुनीजन हैं,
चाँदनी है, चिक है चिरागन की माला हैं।
कहैं पद्माकर त्यौं गजक गिजा है सजी
सेज हैं सुराही हैं सुरा हैं और प्याला हैं।
सिसिर के पाला को व्यापत न कसाला तिन्हें,

जिनके अधीन ऐते उदित मसाला हैं।
तान तुक ताला है, विनोद के रसाला है,
सुबाला हैं, दुसाला हैं विसाला चित्रसाला हैं।

ऐहलौकिकता, श्रृंगारिकता, नायिकाभेद और अलंकार-प्रियता इस युग की प्रमुख विशेषताएं हैं। प्रायः सब कवियों ने ब्रज-भाषा को अपनाया है। स्वतंत्र कविता कम लिखी गई, रस, अलंकार वगैरह काव्यांगों के लक्षण लिखते समय उदाहरण के रूप में-विशेषकर श्रृंगार के आलंबनों एवं उद्दीपनों के उदाहरण के रूप में-सरस रचनाएं इस युग में लिखी गईं। भूषण कवि ने वीर रस की रचनाएं भी दीं। भाव-पक्ष की अपेक्षा कला-पक्ष अधिक समृद्ध रहा। शब्द-शक्ति पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया, न नाट्यशास्त्र का विवेचन किया गया। विषयों का संकोच हो गया और मौलिकता का ह्रास होने लगा। इस समय अनेक कवि हुए- केशव, चिंतामणि, देव, बिहारी, मतिराम, भूषण, घनानंद, पद्माकर आदि। इनमें से केशव, बिहारी और भूषण को इस युग का प्रतिनिधि कवि माना जा सकता है। बिहारी ने दोहों की संभावनाओं को पूर्ण रूप से विकसित कर दिया। आपको रीति-काल का प्रतिनिधि कवि माना जा सकता है।

इस काल के कवियों को तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है-

(1) रीतिबद्ध कवि
(2) रीतिमुक्त कवि
(3) रीतिसिद्ध कवि

विद्वानों का यह भी मत है कि इस काल के कवियों ने काव्य में मर्यादा का पूर्ण पालन किया है। घोर श्रृंगारी कविता होने पर भी कहीं भी मर्यादा का उल्लंघन देखने को नहीं मिलता है।

आधुनिक काल

हिंदी साहित्य का आधुनिक काल तत्कालीन राजनैतिक गतिविधियों से प्रभावित हुआ। इसको हिंदी साहित्य का सर्वश्रेष्ठ युग माना जा सकता है, जिसमें पद्य के साथ-साथ गद्य, समालोचना, कहानी, नाटक व पत्रकारिता का भी विकास हुआ।

सन् 1800 वि. के उपरांत भारत में अनेक यूरोपीय जातियां व्यापार के लिए आईं। उनके संपर्क से यहां पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव पड़ना प्रारंभ हुआ। विदेशियों ने यहां के देशी राजाओं की पारस्परिक फूट से लाभ उठाकर अपने

पैर जमाने में सफलता प्राप्त की। जिसके परिणामस्वरूप यहां पर ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना हुई। अंग्रेजों ने यहां अपने शासन कार्य को सुचारु रूप से चलाने एवं अपने धर्म-प्रचार के लिए जन-साधारण की भाषा को अपनाया। इस कार्य के लिए गद्य ही अधिक उपयुक्त होती है। इस कारण आधुनिक युग की मुख्य विशेषता गद्य की प्रधानता रही। इस काल में होने वाले मुद्रण कला के आविष्कार ने भाषा-विकास में महान योगदान दिया। स्वामी दयानंद ने भी आर्य समाज के ग्रंथों की रचना राष्ट्रभाषा हिंदी में की और अंग्रेज मिशनरियों ने भी अपनी प्रचार पुस्तकें हिंदी गद्य में ही छपवाई। इस तरह विभिन्न मतों के प्रचार कार्य से भी हिंदी गद्य का समुचित विकास हुआ।

इस काल में राष्ट्रीय भावना का भी विकास हुआ। इसके लिए श्रृंगारी ब्रजभाषा की अपेक्षा खड़ी बोली उपयुक्त समझी गई। समय की प्रगति के साथ गद्य और पद्य दोनों रूपों में खड़ी बोली का पर्याप्त विकास हुआ। भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र तथा बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री ने खड़ी बोली के दोनों रूपों को सुधारने में महान प्रयत्न किया। उन्होंने अपनी सर्वतोन्मुखी प्रतिभा द्वारा हिंदी साहित्य की सम्यक संवर्धना की। इस काल के आरंभ में राजा लक्ष्मण सिंह, भारतेंदु हरिश्चंद्र, जगन्नाथ दास रत्नाकर, श्रीधर पाठक, रामचंद्र शुक्ल आदि ने ब्रजभाषा में काव्य रचना की। इनके उपरांत भारतेंदु जी ने गद्य का समुचित विकास किया और आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इसी गद्य को प्रांजल रूप प्रदान किया। इसकी सत्प्रेरणाओं से अन्य लेखकों और कवियों ने भी अनेक भांति की काव्य रचना की। इनमें मैथिलीशरण गुप्त, रामचरित उपाध्याय, नाथूराम शर्मा शंकर, ला. भगवान दीन, रामनरेश त्रिपाठी, जयशंकर प्रसाद, गोपाल शरण सिंह, माखन लाल चतुर्वेदी, अनूप शर्मा, रामकुमार वर्मा, श्याम नारायण पांडेय, दिनकर, सुभद्रा कुमारी चौहान, महादेवी वर्मा आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रभाव से हिंदी-काव्य में भी स्वच्छंद (अतुकांत) छंदों का प्रचलन हुआ।

इस काल में गद्य-निबंध, नाटक-उपन्यास, कहानी, समालोचना, तुलनात्मक आलोचना, साहित्य आदि सभी रूपों का समुचित विकास हुआ। इस युग के प्रमुख साहित्यकार निम्नलिखित हैं- नवचनंद मुणङ, शिवराज आनंद

समालोचक

आचार्य द्विवेदी जी, पद्म सिंह शर्मा, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, डॉ रामकुमार वर्मा, श्यामसुंदर दास, डॉ रामरतन भटनागर आदि हैं।

कहानी लेखक

प्रेमचंद, विनोद शंकर व्यास, प्रसाद, पंत, गुलेरी, निराला, कौशिक, सुदर्शन, जैनेंद्र, हृदयेश मनु बुंदेली आदि।

उपन्यासकार

प्रेमचंद, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, प्रसाद, उग्र, हृदयेश, जैनेंद्र, भगवतीचरण वर्मा, वृंदावन लाल वर्मा, गुरूदत्त आदि।

नाटककार

प्रसाद, सेठ गोविंद दास, गोविंद वल्लभ पंत, लक्ष्मी नारायण मिश्र, उदय शंकर भट्ट, रा उबमकुमार वर्मा आदि हैं।

निबंध लेखक

आचार्य द्विवेदी, माधव प्रसाद शुक्ल, रामचंद्र शुक्ल, बाबू श्यामसुंदर दास, पद्म सिंह, अध्यापक पूर्णसिंह आदि।

हिन्दी साहित्य के नव्योत्तर काल (पोस्ट-माडर्न) की कई धाराएं हैं–

पश्चिम की नकल को छोड एक अपनी वाणी पाना,

अतिशय अलंकार से परे सरलता पाना,

जीवन और समाज के प्रश्नों पर असंदिग्ध विमर्श।

नव्योत्तर काल का साहित्य भारत के समकालीन पुनर्जागरण और भारतीयों की पूरे विश्व में सफलता से प्रेरित हुआ है।

इस काल में गद्य-निबंध, नाटक-उपन्यास, कहानी, समालोचना, तुलनात्मक आलोचना, साहित्य आदि का समुचित विकास हो रहा है। इस युग के प्रमुख साहित्यकार निम्नलिखित हैं-

हिन्दी की अनेक बोलियाँ (उपभाषाएँ) हैं, भारत में कुल 18 बोलियाँ हैं, जिनमें अवधी, ब्रजभाषा, कन्नौजी, बुंदेली, बघेली, हड़ौती,भोजपुरी, हरयाणवी, राजस्थानी, छत्तीसगढ़ी, मालवी, नागपुरी, खोरठा, पंचपरगनिया, कुमाउँनी, मगही आदि प्रमुख हैं। इनमें से कुछ में अत्यंत उच्च श्रेणी के साहित्य की रचना हुई है। ऐसी बोलियों में ब्रजभाषा और अवधी प्रमुख हैं। यह बोलियाँ हिन्दी की विविधता हैं और उसकी शक्ति भी। वे हिन्दी की जड़ों को गहरा बनाती हैं। हिन्दी की बोलियाँ और उन बोलियों की उपबोलियाँ हैं, जो न केवल अपने में

एक बड़ी परंपरा, इतिहास, सभ्यता को समेटे हुए हैं वरन स्वतंत्रता संग्राम, जनसंघर्ष, वर्तमान के बाजारवाद के खिलाफ भी उसका रचना संसार सचेत है।

मोटे तौर पर हिंद (भारत) की किसी भाषा को 'हिंदी' कहा जा सकता है। अंग्रेजी शासन के पूर्व इसका प्रयोग इसी अर्थ में किया जाता था। पर वर्तमानकाल में सामान्यत: इसका व्यवहार उस विस्तृत भूखंड की भाषा के लिए होता है, जो पश्चिम में जैसलमेर, उत्तर पश्चिम में अंबाला, उत्तर में शिमला से लेकर नेपाल की तराई, पूर्व में भागलपुर, दक्षिण पूर्व में रायपुर तथा दक्षिण-पश्चिम में खंडवा तक फैली हुई है। हिंदी के मुख्य दो भेद हैं-पश्चिमी हिंदी तथा पूर्वी हिंदी।

पश्चिमी और पूर्वी हिंदी

जैसा ऊपर कहा गया है, अपने सीमित भाषाशास्त्रीय अर्थ में हिंदी के दो उपरूप माने जाते हैं-पश्चिमी हिंदी और पूर्वी हिंदी।

पश्चिमी हिन्दी

पश्चिमी हिंदी का विकास शौरसैनी अपभ्रंश से हुआ है। इसके अंतर्गत पाँच बोलियाँ हैं-खड़ी बोली, हरियाणी, ब्रज, कन्नौजी और बुंदेली। खड़ी बोली अपने मूल रूप में मेरठ, रामपुर, मुरादाबाद, सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, बिजनौर, के आसपास बोली जाती है। इसी के आधार पर आधुनिक हिंदी और उर्दू का रूप खड़ा हुआ। बांगरू को जाटू या हरियाणवी भी कहते हैं। यह पंजाब के दक्षिण पूर्व में बोली जाती है। कुछ विद्वानों के अनुसार बांगरू खड़ी बोली का ही एक रूप है जिसमें पंजाबी और राजस्थानी का मिश्रण है। ब्रजभाषा मथुरा के आसपास ब्रजमंडल में बोली जाती है। हिंदी साहित्य के मध्ययुग में ब्रजभाषा में उच्च कोटि का काव्य निर्मित हुआ। इसलिए इसे बोली न कहकर आदरपूर्वक भाषा कहा गया। मध्यकाल में यह बोली संपूर्ण हिंदी प्रदेश की साहित्यिक भाषा के रूप में मान्य हो गई थी। पर साहित्यिक ब्रजभाषा में ब्रज के ठेठ शब्दों के साथ अन्य प्रांतों के शब्दों और प्रयोगों का भी ग्रहण है। कन्नौजी गंगा के मध्य दोआब की बोली है। इसके एक ओर ब्रजमंडल है और दूसरी ओर अवधी का क्षेत्र। यह ब्रजभाषा से इतनी मिलती-जुलती है कि इसमें रचा गया जो थोड़ा बहुत साहित्य है वह ब्रजभाषा का ही माना जाता है। बुंदेली बुंदेलखंड की उपभाषा है। बुंदेलखंड में ब्रजभाषा के अच्छे कवि हुए हैं जिनकी काव्यभाषा पर बुंदेली का प्रभाव है।

पूर्वी हिन्दी

पूर्वी हिंदी की तीन शाखाएँ हैं–अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी। अवधी अर्धमागधी प्राकृत की परंपरा में है। यह अवध में बोली जाती है। इसके दो भेद हैं–पूर्वी अवधी और पश्चिमी अवधी। अवधी को बैसवाड़ी भी कहते हैं। तुलसी के रामचरितमानस में अधिकांशत: पश्चिमी अवधी मिलती हैं और जायसी के पदमावत में पूर्वी अवधी। बघेली बघेलखंड में प्रचलित है। यह अवधी का ही एक दक्षिणी रूप है। छत्तीसगढ़ी पलामू (बिहार) की सीमा से लेकर दक्षिण में बस्तर तक और पश्चिम में बघेलखंड की सीमा से उड़ीसा की सीमा तक फैले हुए भूभाग की बोली है। इसमें प्राचीन साहित्य नहीं मिलता। वर्तमान काल में कुछ लोकसाहित्य रचा गया है।

== बिहारी, राजस्थानी == बिहारी हिंदी के अंतर्गत मगही,भोजपुरी,आदि बोलियां आती हैं

और पहाड़ी

हिंदी प्रदेश की तीन उपभाषाएँ और हैं–बिहारी,राजस्थानी और पहाड़ी हिंदी।

बिहारी की तीन शाखाएँ हैं–भोजपुरी, मगही और मैथिली। बिहार के एक कस्बे भोजपुर के नाम पर भोजपुरी बोली का नामकरण हुआ। पर भोजपुरी का प्रसार बिहार से अधिक उत्तर प्रदेश में है। बिहार के शाहाबाद, चंपारन और सारन जिले से लेकर गोरखपुर तथा बारस कमिश्नरी तक का क्षेत्र भोजपुरी का है। भोजपुरी पूर्वी हिंदी के अधिक निकट है। हिंदी प्रदेश की बोलियों में भोजपुरी बोलनेवालों की संख्या सबसे अधिक है। इसमें प्राचीन साहित्य तो नहीं मिलता पर ग्रामगीतों के अतिरिक्त वर्तमान काल में कुछ साहित्य रचने का प्रयत्न भी हो रहा है। मगही के केंद्र पटना और गया हैं। इसके लिए कैथी लिपि का व्यवहार होता है। पर आधुनिक मगही साहित्य मुख्यत: देवनागरी लिपि में लिखी जा रही है। मगही का आधुनिक साहित्य बहुत समृद्ध है और इसमें प्राय: सभी विधाओं में रचनाओं का प्रकाशन हुआ है।

मैथिली एक स्वतंत्र भाषा है, जो संस्कृत के करीब होने के कारण हिंदी से मिलती–जुलती लगती है। परन्तु, मैथिली हिंदी से अधिक बांग्ला के निकट है।

मैथिली गंगा के उत्तर में दरभंगा के आसपास प्रचलित है। इसकी साहित्यिक परंपरा पुरानी है। विद्यापति के पद प्रसिद्ध ही हैं। मध्ययुग में लिखे

मैथिली नाटक भी मिलते हैं। आधुनिक काल में भी मैथिली का साहित्य निर्मित हो रहा है।

मैथिली भाषा भारत और नेपाल के संविधान में राजभाषा के रूप में भी दर्ज है। नेपाल में दूसरी सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषा मैथिली है।

राजस्थानी का प्रसार पंजाब के दक्षिण में है। यह पूरे राजपूताने और मध्य प्रदेश के मालवा में बोली जाती है। राजस्थानी का संबंध एक ओर ब्रजभाषा से है और दूसरी ओर गुजराती से। पुरानी राजस्थानी को डिंगल कहते हैं। जिसमें चारणों का लिखा हिंदी का आरंभिक साहित्य उपलब्ध है। राजस्थानी में गद्य साहित्य की भी पुरानी परंपरा है। राजस्थानी की चार मुख्य बोलियाँ या विभाषाएँ हैं- मेवाती, मालवी, जयपुरी और मारवाड़ी। मारवाड़ी का प्रचलन सबसे अधिक है। राजस्थानी के अंतर्गत कुछ विद्वान् भीली को भी लेते हैं।

पहाड़ी उपभाषा राजस्थानी से मिलती-जुलती हैं। इसका प्रसार हिंदी प्रदेश के उत्तर हिमालय के दक्षिणी भाग में नेपाल से शिमला तक है। इसकी तीन शाखाएँ हैं-पूर्वी, मध्यवर्ती और पश्चिमी। पूर्वी पहाड़ी नेपाल की प्रधान भाषा है जिसे नेपाली और परंबतिया भी कहा जाता है। मध्यवर्ती पहाड़ी कुमायूँ और गढ़वाल में प्रचलित है। इसके दो भेद हैं-कुमाउँनी और गढ़वाली। ये पहाड़ी उपभाषाएँ नागरी लिपि में लिखी जाती हैं। इनमें पुराना साहित्य नहीं मिलता। आधुनिक काल में कुछ साहित्य लिखा जा रहा है। कुछ विद्वान् पहाड़ी को राजस्थानी के अंतर्गत ही मानते हैं। पश्चिमी पहाड़ी हिमाचल प्रदेश में बोली जाती है। इसकी मुख्य उपबोलियों में मंडियाली, कुल्लवी, चाम्बियाली, क्योँथली, कांगड़ी, सिरमौरी, बघाटी और बिलासपुरी प्रमुख हैं।

प्रयोग-क्षेत्र के अनुसार वर्गीकरण

हिन्दी भाषा का भौगोलिक विस्तार काफी दूर-दूर तक है जिसे तीन क्षेत्रों में विभक्त किया जा सकता है–

(क) हिन्दी क्षेत्र–हिन्दी क्षेत्र में हिन्दी की मुख्यत: सत्रह बोलियाँ बोली जाती हैं, जिन्हें पाँच बोली वर्गों में इस प्रकार विभक्त कर के रखा जा सकता है- पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, राजस्थानी हिन्दी, पहाडी हिन्दी और बिहारी हिन्दी।

(ख) अन्य भाषा क्षेत्र–इनमें प्रमुख बोलियाँ इस प्रकार हैं- दक्खिनी हिन्दी (गुलबर्गी, बीदरी, बीजापुरी तथा हैदराबादी आदि), बम्बइया हिन्दी, कलकतिया हिन्दी तथा शिलंगी हिन्दी (बाजार-हिन्दी) आदि।

(ग) भारतेत्तर क्षेत्र–भारत के बाहर भी कई देशों में हिन्दी भाषी लोग काफी बड़ी संख्या में बसे हैं। सीमावर्ती देशों के अलावा यूरोप, अमेरिका, आस्ट्रेलिया, अफ्रीका, रूस, जापान, चीन तथा समस्त दक्षिण पूर्व व मध्य एशिया में हिन्दी बोलने वालों की बहुत बड़ी संख्या है। लगभग सभी देशों की राजधानियों के विश्वविद्यालयों में हिन्दी एक विषय के रूप में पढ़ी-पढाई जाती है। भारत के बाहर हिन्दी की प्रमुख बोलियाँ–ताजुज्बेकी हिन्दी, मारिशसी हिन्दी, फीजी हिन्दी, सूरीनामी हिन्दी आदि हैं।

हिंदी प्रदेशों की हिंदी बोलियाँ

पश्चिमी हिंदी

1. खड़ी बोली-देहरादून, सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, मेरठप, बिजनौर, रामपुर और मुरादाबाद।
2. बृजभाषा-आगरा, मथुरा, अलीगढ़, मैनपुरी, एटा, हाथरस, बदायूं, बरेली, धौलपुर।
3. हरियाणवी-हरियाणा और दिल्ली का देहाती प्रदेश।
4. बुंदेली-झांसी, जालौन, हमीरपुर, ओरछा, सागर, नृसिंहपुर, सिवनी, होशंगाबादल।
5. कन्नौजी–उत्तर प्रदेश के इटावा, फर्रूखाबाद, शाहजहांपुर, कानपुर, हरदोई और पीलीभीत, जिलों के ग्रामीणांचल में बहुतायत से बोली जाती है।

पूर्वी हिंदी

1. अवधी-कानपुर, लखनऊ, बाराबंकी, उन्नाव, रायबरेली, सीतापुर, फतेहपुर, अयोध्या, गोंडा, प्रतापगढ़, सुल्तानपुर जिले।
2. बघेली-रीवा, शहदोल, सतना, मैहर, नागौद।
3. छत्तीसगढ़ी-बिलासपुर, दुर्ग, रायपुर, रायगढ़, नंदगांव, काकेर, सरगुजा, कोरिया।

राजस्थानी

1. मारवाड़ी भाषा
2. जयपुरी
3. मेवाती
4. मालवी

पहाड़ी

1. पूर्वी पहाड़ी, जिसमें नेपाली आती है
2. मध्यवर्ती पहाड़ी, जिसमें कुमाऊंनी और गढ़वाली आती है।
3. पश्चिमी पहाड़ी, जिसमें हिमाचल प्रदेश की अनेक बोलियां आती हैं।

बिहारी भाषा

1. मैथिली
2. भोजपुरी
3. मगही
4. नागपुरी
5. अंगिका
6. बज्जिका
7. खोरठा
8. पंचपरगनिया।

2

आधुनिक हिंदी पद्य का इतिहास

आधुनिक काल 1850 से हिंदी साहित्य के इस युग को भारत में राष्ट्रीयता के बीज अंकुरित होने लगे थे। स्वतंत्रता संग्राम लड़ा और जीता गया। छापेखाने का आविष्कार हुआ, आवागमन के साधन आम आदमी के जीवन का हिस्सा बने, जन संचार के विभिन्न साधनों का विकास हुआ, रेडिओ, टी वी व समाचार पत्र हर घर का हिस्सा बने और शिक्षा हर व्यक्ति का मौलिक अधिकार। इन सब परिस्थितियों का प्रभाव हिंदी साहित्य पर अनिवार्यत: पड़ा। आधुनिक काल का हिंदी पद्य साहित्य पिछली सदी में विकास के अनेक पड़ावों से गुजरा। जिसमें अनेक विचार धाराओं का बहुत तेजी से विकास हुआ। जहां काव्य में इसे छायावादी युग, प्रगतिवादी युग, प्रयोगवादी युग, नयी कविता युग और साठोत्तरी कविता इन नामों से जाना गया, छायावाद से पहले के पद्य को भारतेंदु हरिश्चंद्र युग और महावीर प्रसाद द्विवेदी युग को दो और युगों में बांटा गया। इसके विशेष कारण भी हैं।

भारतेंदु हरिश्चंद्र युग की कविता (1850-1900)

ईस्वी सन् 1850 से 1900 तक की कविताओं पर भारतेंदु हरिश्चंद्र का गहरा प्रभाव पड़ा है। वे ही आधुनिक हिंदी साहित्य के पितामह हैं। उन्होंने भाषा को एक चलता हुआ रूप देने की कोशिश की। आपके काव्य-साहित्य में प्राचीन

एवं नवीन का मेल लक्षित होता है। भक्तिकालीन, रीतिकालीन परंपराएं आपके काव्य में देखी जा सकती हैं तो आधुनिक नूतन विचार और भाव भी आपकी कविताओं में पाए जाते हैं। आपने भक्ति-प्रधान, श्रृंगार-प्रधान, देश-प्रेम-प्रधान तथा सामाजिक-समस्या-प्रधान कविताएं की हैं। आपने ब्रजभाषा से खड़ीबोली की और हिंदी-कविता को ले जाने का प्रयास किया। आपके युग में अन्य कई महानुभाव ऐसे हैं जिन्होंने विविध प्रकार हिंदी साहित्य को समृद्ध किया। इस काल के प्रमुख कवि हैं–

1. भार्तेन्दु हरिश्चन्द्र
2. प्रताप नारायण मिश्र
3. बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'
4. राधाचरण गोस्वामी
5. अम्बिका दत्त व्यास।

पं महावीर प्रसाद द्विवेदी युग की कविता (1900-1920)

सन् 1900 के बाद दो दशकों पर पं महावीर प्रसाद द्विवेदी का पूरा प्रभाव पड़ा। इस युग को इसीलिए द्विवेदी-युग कहते हैं। 'सरस्वती' पत्रिका के संपादक के रूप में आप उस समय पूरे हिंदी साहित्य पर छाए रहे। आपकी प्रेरणा से ब्रज-भाषा हिंदी कविता से हटती गई और खड़ी बोली ने उसका स्थान ले लिया। भाषा को स्थिर, परिष्कृत एवं व्याकरण-सम्मत बनाने में आपने बहुत परिश्रम किया। कविता की दृष्टि से वह इतिवृत्तात्मक युग था। आदर्शवाद का बोलबाला रहा। भारत का उज्ज्वल अतीत, देश-भक्ति, सामाजिक सुधार, स्वभाषा-प्रेम वगैरह कविता के मुख्य विषय थे। नीतिवादी विचारधारा के कारण श्रृंगार का वर्णन मर्यादित हो गया। कथा-काव्य का विकास इस युग की विशेषता है। भाषा खुरदरी और सरल रही। मधुरता एवं सरलता के गुण अभी खड़ी-बोली में आ नहीं पाए थे। सर्वश्री मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी आदि इस युग के यशस्वी कवि हैं। जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने इसी युग में ब्रज भाषा में सरस रचनाएं प्रस्तुत कीं। इस युग के प्रमुख कवि-

1. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
2. रामचरित उपाध्याय
3. जगन्नाथ दास रत्नाकर

4. गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही'
5. श्रीधर पाठक
6. राम नरेश त्रिपाठी
7. मैथिलीशरण गुप्त
8. लोचन प्रसाद पाण्डेय
9. सियारामशरण गुप्त

छायावादी युग की कविता (1920-1936)

सन् 1920 के आसपास हिंदी में कल्पनापूर्ण स्वछंद और भावुक कविताओं की एक बाढ़ आई। यह यूरोप के रोमांटिसिज्म से प्रभावित थी। भाव, शैली, छंद, अलंकार सब दृष्टियों से इसमें नयापन था। भारत की राजनीतिक स्वतंत्रता के बाद लोकप्रिय हुई इस कविता को आलोचकों ने छायावादी युग का नाम दिया। छायावादी कवियों की उस समय भारी कटु आलोचना हुई परंतु आज यह निर्विवाद तथ्य है कि आधुनिक हिंदी कविता की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि इसी समय के कवियों द्वारा हुई। जयशंकर प्रसाद, निराला, सुमित्रनंदन पंत, महादेवी वर्मा इस युग के प्रधान कवि हैं।

उत्तर-छायावाद युग-(1936-1943)

यह काल भारतीय राजनीति में भारी उथल-पुथल का काल रहा है। राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय, कई विचारधाराओं और आन्दोलनों का प्रभाव इस काल की कविता पर पड़ा। द्वितीय विश्वयुद्ध के भयावह परिणामों के प्रभाव से भी इस काल की कविता बहुत हद तक प्रभावित है। निष्कर्षत: राष्ट्रवादी, गांधीवादी, विप्लववादी, प्रगतिवादी, यथार्थवादी, हालावादी आदि विविध प्रकार की कवितायें इस काल में लिखी गई। इस काल के प्रमुख कवि हैं–

माखनलाल चतुर्वेदी
बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'
सुभद्रा कुमारी चौहान
रामधारी सिंह 'दिनकर'
हरिवंश राय 'बच्चन'
भगवतीचरण वर्मा
नरेन्द्र शर्मा

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'
शिवमंगल सिंह 'सुमन'
नागार्जुन
केदारनाथ अग्रवाल
त्रिलोचन
रांगेय राघव

प्रगतिवादी युग की कविता (1936)

छायावादी काव्य बुद्धिजीवियों के मध्य ही रहा। जन-जन की वाणी यह नहीं बन सका। सामाजिक एवं राजनैतिक आंदोलनों का सीधा प्रभाव इस युग की कविता पर सामान्यत: नहीं पड़ा। संसार में समाजवादी विचारधारा तेजी से फैल रही थी। सर्वहारा वर्ग के शोषण के विरुद्ध जनमत तैयार होने लगा। इसकी प्रतिच्छाया हिंदी कविता पर भी पड़ी और हिंदी साहित्य के प्रगतिवादी युग का जन्म हुआ। 1930 के बाद की हिंदी कविता ऐसी प्रगतिशील विचारधारा से प्रभावित है। 1936 में 'प्रगतिशील लेखक संघ' के गठन के साथ हिन्दी साहित्य में मार्क्सवादी विचारधारा से प्रेरित प्रगतिवादी आन्दोलन की शुरुआत हुई। इसका सबसे अधिक दूरगामी प्रभाव हिन्दी आलोचना पर पड़ा। मार्क्सवादी आलोचकों ने हिन्दी साहित्य के समूचे इतिहास को वर्ग-संघर्ष के दष्टिकोण से पुनर्मूल्यांकन करने का प्रयास आरंभ किया। प्रगतिवादी कवियों में नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल और त्रिलोचन के साथ नयी कविता के कवि मुक्तिबोध और शमशेर को भी रक्खा जाता है।

प्रयोगवाद-नयी कविता युग की कविता (1943-1960)

दूसरे विश्वयुद्ध के पश्चात संसार भर में घोर निराशा तथा अवसाद की लहर फैल गई। साहित्य पर भी इसका प्रभाव पड़ा। 'अज्ञेय' के संपादन में 1943 में 'तार सप्तक' का प्रकाशन हुआ। तब से हिंदी कविता में प्रयोगवादी युग का जन्म हुआ ऐसी मान्यता है। इसी का विकसित रूप नयी कविता कहलाता है। दुर्बोधता, निराशा, कुंठा, वैयक्तिकता, छंदहीनता के आक्षेप इस कविता पर भी किए गए हैं। वास्तव में नयी कविता नयी रुचि का प्रतिबिंब है। इस धारा के मुख्य कवि हैं-

अज्ञेय,
गिरिजाकुमार माथुर,
प्रभाकर माचवे,
भारतभूषण अग्रवाल,
मुक्तिबोध,
शमशेर बहादुर सिंह,
धर्मवीर भारती,
नरेश मेहता,
रघुवीर सहाय,
जगदीश गुप्त,
सर्वेश्वर दयाल सक्सेना,
कुंवर नारायण,
केदार नाथ सिंह।

इस प्रकार आधुनिक हिंदी खड़ी बोली कविता ने भी अल्प समय में उपलब्धि के उच्च शिखर सर किए हैं। क्या प्रबंध काव्य, क्या मुक्तक काव्य, दोनों में हिंदी कविता ने सुंदर रचनाएं प्राप्त की हैं। गीति-काव्य के क्षेत्र में भी कई सुंदर रचनाएं हिंदी को मिली हैं। आकार और प्रकार का वैविध्य बरबस हमारा ध्यान आकर्षित करता है। संगीत-रूपक, गीत-नाट्य वगैरह क्षेत्रों में भी प्रशंसनीय कार्य हुआ है। कविता के बाह्य एवं अंतरंग रूपों में युगानुरूप जो नये-नये प्रयोग नित्य-प्रति होते रहते हैं, वे हिंदी कविता की जीवनी-शक्ति एवं स्फूर्ति के परिचायक हैं।

3

आधुनिक हिंदी गद्य का इतिहास

हिंदी साहित्य शुरू करने का श्रेय प्रसिद्ध फ्रेंच विद्वान लेखक गार्सा दतासी को दिया जा सकता है। हिंदी गद्य के अविभाज्य के संबंध में विद्वान एकमत नहीं है। कुछ 10वीं शताब्दी मांनते हैं कुछ 11वीं शताब्दी, कुछ 13 शताब्दी। राजस्थानी एवं ब्रज भाषा में हमें गद्य के प्राचीनतम प्रयोग मिलते हैं। राजस्थानी गद्य की समय सीमा 11वीं शताब्दी से 14वीं शताब्दी तथा ब्रज गद्य की सीमा 14वीं शताब्दी से 16वीं शताब्दी तक मानी जाती हैं। माना जाता है कि 10वीं शताब्दी से 13वीं शताब्दी के मध्य ही हिंदी गद्य की शुरुआत हुई थी।खड़ी बोली के प्रथम दर्शन अकबर के दरबारी कवि गंग द्वारा रचित चंद छंद बरनन की महिमा में होते हैं अध्ययन की दृष्टि से हिंदी गद्य साहित्य के विकास को इस प्रकार विभाजित किया जा सकता है। हिन्दी गद्य के विकास को विभिन्न सोपानों में विभक्त किया जा सकता है–

(1) पूर्व भारतेंदु युग (प्राचीन युग)– 13 century ईस्वी से 1868 ईस्वी तक।

(2) भारतेंदु युग (नवजागरण काल)– 1868–1900

ईस्वी से 1900 ईस्वी तक

(3) द्विवेदी युग– 1900 ईस्वी से 1922 ईस्वी तक।

(4) शुक्ल युग (छायावादी युग)– 1922 ईस्वी से 1938 ईस्वी तक।

(5) शुक्लोत्तर युग (छायावादोत्तर युग)– 1938 ईस्वी से 1947 आज तक।

(6) स्वातंत्र्योत्तर युग–1947 से अब तक।

Soure:NCERT Hindi UP board- By: नीरज यादव–अभय गौड

19वीं सदी से पहले का हिन्दी गद्य

हिन्दी गद्य के उद्‌भव को लेकर विद्वानों में मतभेद हैं। कुछ विद्वान हिन्दी गद्य की शुरूआत 19वीं सदी से ही मानते हैं जबकि कुछ अन्य हिन्दी गद्य की परम्परा को 11वीं–12वीं सदी तक ले जाते हैं। आधुनिक काल से पूर्व हिन्दी गद्य की निम्न परम्पराएं मिलती हैं–

(1) राजस्थानी में हिन्दी गद्य
(2) ब्रजभाषा में हिन्दी गद्य
(3) दक्खिनी में हिन्दी गद्य
(4) गुरूमुखी लिपि में हिन्दी गद्य

भारतेंदु पूर्व युग

हिन्दी में गद्य का विकास 19वीं शताब्दी के आसपास हुआ। इस विकास में कलकत्ता के फोर्ट विलियम कॉलेज की महत्वपूर्ण भूमिका रही। इस कॉलेज के दो विद्वानों लल्लूलाल जी तथा सदल मिश्र ने गिलक्राइस्ट के निर्देशन में क्रमशः प्रेमसागर तथा नासिकेतोपाख्यान नामक पुस्तकें तैयार कीं। इसी समय सदासुखलाल ने सुखसागर तथा मुंशी इंशा अल्ला खां ने 'रानी केतकी की कहानी' की रचना की। इन सभी ग्रंथों की भाषा में उस समय प्रयोग में आनेवाली खडी बोली को स्थान मिला। ये सभी कृतियाँ सन् 1803 में रची गयी थीं।

आधुनिक खडी बोली के गद्य के विकास में विभिन्न धर्मों की परिचयात्मक पुस्तकों का खूब सहयोग रहा जिसमें ईसाई धर्म का भी योगदान रहा। बंगाल के राजा राम मोहन राय ने 1815 ईस्वी में वेदांत सूत्र का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करवाया। इसके बाद उन्होंने 1829 में बंगदूत नामक पत्र हिन्दी में निकाला। इसके पहले ही 1826 में कानपुर के पं जुगल किशोर ने हिन्दी का पहला समाचार पत्र उदंतमार्तंड कलकत्ता से निकाला.। इसी समय गुजराती भाषी

आर्य समाज संस्थापक स्वामी दयानंद सरस्वती ने अपना प्रसिद्ध ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश हिन्दी में लिखा।

भारतेंदु युग

भारतेंदु हरिश्चंद्र (1850-1885) को हिन्दी-साहित्य के आधुनिक युग का प्रतिनिधि माना जाता है। उन्होंने कविवचन सुधा, हरिश्चन्द्र मैगजीन और हरिश्चंद्र पत्रिका निकाली। साथ ही अनेक नाटकों की रचना की। उनके प्रसिद्ध नाटक हैं- चंद्रावली, भारत दुर्दशा, अंधेर नगरी। ये नाटक रंगमंच पर भी बहुत लोकप्रिय हुए. इस काल में निबंध नाटक उपन्यास तथा कहानियों की रचना हुई। इस काल के लेखकों में बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र, राधा चरण गोस्वामी, उपाध्याय बदरीनाथ चौधरी प्रेमघन, लाला श्रीनिवास दास, बाबू देवकी नंदन खत्री और किशोरी लाल गोस्वामी आदि उल्लेखनीय हैं। इनमें से अधिकांश लेखक होने के साथ-साथ पत्रकार भी थे।

श्रीनिवासदास के उपन्यास परीक्षागुरू को हिन्दी का पहला उपन्यास कहा जाता है। कुछ विद्वान श्रद्धाराम फुल्लौरी के उपन्यास भाग्यवती को हिन्दी का पहला उपन्यास मानते हैं। बाबू देवकीनंदन खत्री का चंद्रकांता तथा चंद्रकांता संतति आदि इस युग के प्रमुख उपन्यास हैं। ये उपन्यास इतने लोकप्रिय हुए कि इनको पढ़ने के लिये बहुत से अहिंदी भाषियों ने हिंदी सीखी। इस युग की कहानियों में शिवप्रसाद सितारे हिन्द की राजा भोज का सपना महत्त्वपूर्ण है।

बलदेव अग्रहरि की सन् 1887 में प्रकाशित नाट्य पुस्तक 'सुलोचना सती' में सुलोचना की कथा के साथ आधुनिक कथा को भी स्थान दिया गया हैं, जिसमे संपादकों और देश सुधारकों पर व्यंग्य किया गया हैं। कई नाटकों में मुख्य कथानक ही यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करते हैं। बलदेव अग्रहरि की सुलोचना सती में भिन्नतुकांत छंद का आग्रह भी दिखाई देता हैं।

द्विवेदी युग

पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम पर ही इस युग का नाम द्विवेदी युग रखा गया। सन् 1903 ईस्वी में द्विवेदी जी ने सरस्वती पत्रिका के संपादन का भार संभाला। उन्होंने खड़ी बोली गद्य के स्वरूप को स्थिर किया और पत्रिका के माध्यम से रचनाकारों के एक बड़े समुदाय को खड़ी बोली में लिखने को

प्रेरित किया। इस काल में निबंध, उपन्यास, कहानी, नाटक एवं समालोचना का अच्छा विकास हुआ।

इस युग के निबंधकारों में महावीर प्रसाद द्विवेदी, माधव प्रसाद मिश्र, श्याम सुंदर दास, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, बाल मुकंद गुप्त और अध्यापक पूर्ण सिंह आदि उल्लेखनीय हैं। इनके निबंध गंभीर, ललित एवं विचारात्मक हैं। किशोरीलाल गोस्वामी और बाबू गोपाल राम गहमरी के उपन्यासों में मनोरंजन और घटनाओं की रोचकता है।

हिंदी कहानी का वास्तविक विकास द्विवेदी युग से ही शुरू हुआ। किशोरी लाल गोस्वामी की इंदुमती कहानी को कुछ विद्वान हिंदी की पहली कहानी मानते हैं। अन्य कहानियों में बंग महिला की दुलाई वाली, शुक्ल जी की ग्यारह वर्ष का समय, प्रसाद जी की ग्राम और चंद्रधर शर्मा गुलेरी की उसने कहा था महत्त्वपूर्ण हैं। समालोचना के क्षेत्र में पद्मसिंह शर्मा उल्लेखनीय हैं। हरिऔध, शिवनंदन सहाय तथा राय देवीप्रसाद पूर्ण द्वारा कुछ नाटक लिखे गए। इस युग ने कई सम्पादकों को जन्म दिया। पन्डित ईश्वरी प्रसाद शर्मा ने आधा दर्जन से अधिक पत्रों का सम्पादन किया। शिव पूजन सहाय उनके योग्य शिष्यों में शुमार हुए। इस युग में हिन्दी आलोचना को एक दिशा मिली। इस युग ने हिन्दी के विकास की नींव रखी। यह कई मायनों में नई मान्यताओं की स्थापना करने वाला युग रहा।

रामचंद्र शुक्ल एवं प्रेमचंद युग

गद्य के विकास में इस युग का विशेष महत्त्व है। पं रामचंद्र शुक्ल (1884–1941) ने निबंध, हिन्दी साहित्य के इतिहास और समालोचना के क्षेत्र में गंभीर लेखन किया। उन्होंने मनोविकारों पर हिंदी में पहली बार निबंध लेखन किया। साहित्य समीक्षा से संबंधित निबंधों की भी रचना की। उनके निबंधों में भाव और विचार अर्थात् बुद्धि और हृदय दोनों का समन्वय है। हिंदी शब्दसागर की भूमिका के रूप में लिखा गया उनका इतिहास आज भी अपनी सार्थकता बनाए हुए है। जायसी, तुलसीदास और सूरदास पर लिखी गयी उनकी आलोचनाओं ने भावी आलोचकों का मार्गदर्शन किया। इस काल के अन्य निबंधकारों में जैनेन्द्र कुमार जैन, सियारामशरण गुप्त, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी और जयशंकर प्रसाद आदि उल्लेखनीय हैं।

कथा साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचंद ने क्रांति ही कर डाली। अब कथा साहित्य केवल मनोरंजन, कौतूहल और नीति का विषय ही नहीं रहा बल्कि सीधे जीवन की समस्याओं से जुड़ गया। उन्होंने सेवा सदन, रंगभूमि, निर्मला, गबन एवं गोदान आदि उपन्यासों की रचना की। उनकी तीन सौ से अधिक कहानियां मानसरोवर के आठ भागों में तथा गुप्तधन के दो भागों में संग्रहित हैं। पूस की रात, कफन, शतरंज के खिलाडी, पंच परमेश्वर, नमक का दरोगा तथा ईदगाह आदि उनकी कहानियां खूब लोकप्रिय हुईं। इसकाल के अन्य कथाकारों में विश्वंभर शर्मा कौशिक, वृंदावनलाल वर्मा, राहुल सांकृत्यायन, पांडेय बेचन शर्मा उग्र, उपेन्द्रनाथ अश्क, जयशंकर प्रसाद, भगवतीचरण वर्मा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

नाटक के क्षेत्र में जयशंकर प्रसाद का विशेष स्थान है। इनके चंद्रगुप्त, स्कंदगुप्त, ध्रुवस्वामिनी जैसे ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास और कल्पना तथा भारतीय और पाश्चात्य नाट्य पद्धतियों का समन्वय हुआ है। लक्ष्मीनारायण मिश्र, हरिकृष्ण प्रेमी, जगदीशचंद्र माथुर आदि इस काल के उल्लेखनीय नाटककार हैं।

अद्यतन काल

इस काल में गद्य का चहुंमुखी विकास हुआ। पं हजारी प्रसाद द्विवेदी, जैनेंद्र कुमार, अज्ञेय, यशपाल, नंददुलारे वाजपेयी, डॉ. नगेंद्र, रामवृक्ष बेनीपुरी तथा डॉ. रामविलास शर्मा आदि ने विचारात्मक निबंधों की रचना की है। हजारी प्रसाद द्विवेदी, विद्यानिवास मिश्र, कुबेर नाथ राय, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, विवेकी राय, ने ललित निबंधों की रचना की है। हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल, रवींन्द्रनाथ त्यागी, तथा के पी सक्सेना, के व्यंग्य आज के जीवन की विद्रूपताओं के उद्घाटन में सफल हुए हैं। जैनेन्द्र, अज्ञेय, यशपाल, इलाचंद्र जोशी, अमृतलाल नागर, रांगेय राघव और भगवती चरण वर्मा ने उल्लेखनीय उपन्यासों की रचना की। नागार्जुन, फणीश्वर नाथ रेणु, अमृतराय, तथा राही मासूम रजा ने लोकप्रिय आंचलिक उपन्यास लिखे हैं। मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, मन्नू भंडारी, कमलेश्वर, भीष्म साहनी, भैरव प्रसाद गुप्त, आदि ने आधुनिक भाव बोध वाले अनेक उपन्यासों और कहानियों की रचना की है। अमरकांत, निर्मल वर्मा तथा ज्ञानरंजन आदि भी नए कथा साहित्य के महत्वपूर्ण स्तंभ हैं।

प्रसादोत्तर नाटकों के क्षेत्र में लक्ष्मीनारायण लाल, लक्ष्मीकांत वर्मा, मोहन राकेश तथा कमलेश्वर के नाम उल्लेखनीय हैं। कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर,

रामवृक्ष बेनीपुरी तथा बनारसीदास चतुर्वेदी आदि ने संस्मरण रेखाचित्र व जीवनी आदि की रचना की है। शुक्ल जी के बाद पं हजारी प्रसाद द्विवेदी, नंद दुलारे वाजपेयी, नगेन्द्र, रामविलास शर्मा तथा नामवर सिंह ने हिंदी समालोचना को समृद्ध किया। आज गद्य की अनेक नयी विधाओं जैसे यात्रा वृत्तांत, रिपोर्ताज, रेडियो रूपक, आलेख आदि में विपुल साहित्य की रचना हो रही है और गद्य की विधाएं एक दूसरे से मिल रही हैं।

4

हिन्दी साहित्य का इतिहास

हिन्दी साहित्य पर अगर समुचित परिप्रेक्ष्य में विचार किया जाए तो स्पष्ट होता है कि हिन्दी साहित्य का इतिहास अत्यंत विस्तृत व प्राचीन है। सुप्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक डॉ0 हरदेव बाहरी के शब्दों में, हिन्दी साहित्य का इतिहास वस्तुत: वैदिक काल से आरम्भ होता है। यह कहना ही ठीक होगा कि वैदिक भाषा ही हिन्दी है। इस भाषा का दुर्भाग्य रहा है कि युग-युग में इसका नाम परिवर्तित होता रहा है। कभी 'वैदिक', कभी 'संस्कृत', कभी 'प्राकृत', कभी 'अपभ्रंश' और अब-हिन्दी। आलोचक कह सकते हैं कि 'वैदिक संस्कृत' और 'हिन्दी' में तो जमीन-आसमान का अन्तर है। पर ध्यान देने योग्य है कि हिब्रू, रूसी, चीनी, जर्मन और तमिल आदि जिन भाषाओं को 'बहुत पुरानी' बताया जाता है, उनके भी प्राचीन और वर्तमान रूपों में जमीन-आसमान का अन्तर है, पर लोगों ने उन भाषाओं के नाम नहीं बदले और उनके परिवर्तित स्वरूपों को 'प्राचीन', 'मध्यकालीन', 'आधुनिक' आदि कहा गया, जबकि 'हिन्दी' के सन्दर्भ में प्रत्येक युग की भाषा का नया नाम रखा जाता रहा।

हिन्दी भाषा के उद्‌भव और विकास के सम्बन्ध में प्रचलित धारणाओं पर विचार करते समय हमारे सामने हिन्दी भाषा की उत्पत्ति का प्रश्न दसवीं शताब्दी के आसपास की प्राकृताभास भाषा तथा अपभ्रंश भाषाओं की ओर जाता है। अपभ्रंश शब्द की व्युत्पत्ति और जैन रचनाकारों की अपभ्रंश कृतियों का हिन्दी से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए जो तर्क और प्रमाण हिन्दी साहित्य के इतिहास

ग्रन्थों में प्रस्तुत किये गये हैं उन पर विचार करना भी आवश्यक है। सामान्यत: प्राकृत की अन्तिम अपभ्रंश-अवस्था से ही हिन्दी साहित्य का आविर्भाव स्वीकार किया जाता है। उस समय अपभ्रंश के कई रूप थे और उनमें सातवीं-आठवीं शताब्दी से ही पद्य-रचना प्रारम्भ हो गयी थी।

साहित्य की दृष्टि से पद्यबद्ध जो रचनाएँ मिलती हैं वे दोहा रूप में ही हैं और उनके विषय, धर्म, नीति, उपदेश आदि प्रमुख हैं। राजाश्रित कवि और चारण नीति, श्रृंगार, शौर्य, पराक्रम आदि के वर्णन से अपनी साहित्य-रुचि का परिचय दिया करते थे। यह रचना-परम्परा आगे चलकर शौरसेनी अपभ्रंश या 'प्राकृताभास हिन्दी' में कई वर्षों तक चलती रही। पुरानी अपभ्रंश भाषा और बोलचाल की देशी भाषा का प्रयोग निरन्तर बढ़ता गया। इस भाषा को विद्यापति ने देशी भाषा कहा है, किन्तु यह निर्णय करना सरल नहीं है कि हिन्दी शब्द का प्रयोग इस भाषा के लिए कब और किस देश में प्रारम्भ हुआ।

हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन का इतिहास

आरंभिक काल से लेकर आधुनिक व आज की भाषा में आधुनिकोत्तर काल तक साहित्य इतिहास लेखकों के शताधिक नाम गिनाये जा सकते हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास शब्दबद्ध करने का प्रश्न अधिक महत्वपूर्ण था।

हिन्दी साहित्य के इतिहासकार और उनके ग्रन्थ

हिन्दी साहित्य के मुख्य इतिहासकार और उनके ग्रन्थ निम्नानुसार हैं -

1. गार्सा द तासी–इस्तवार द ला लितेरात्यूर ऐंदुई ऐंदुस्तानी (फ्रेंच भाषा में, फ्रेंच विद्वान, हिन्दी साहित्य के पहले इतिहासकार),(1839)
2. मौलवी करीमुद्दीन–तजकिरा-ऐ-शुअराई, (1848)
3. शिवसिंह सेंगर–शिव सिंह सरोज,(1883)
4. जार्ज ग्रियर्सन–द मॉडर्न वर्नेक्यूलर लिट्रैचर ऑफ हिंदोस्तान, (1888)
5. मिश्र बंधु–मिश्र बंधु विनोद (चार भागों में) भाग 1,2 और 3-(1913 में) भाग 4 (1934 में)
6. एडविन ग्रीव्स–ए स्कैच ऑफ हिंदी लिटरेचर,(1917)
7. एफ. ई. के. महोदय–ए हिस्ट्री ऑफ हिंदी लिटरेचर (1920)
8. रामचंद्र शुक्ल–हिन्दी साहित्य का इतिहास (1929)

9. हजारी प्रसाद द्विवेदी–हिन्दी साहित्य की भूमिका (1940), हिन्दी साहित्य का आदिकाल (1952), हिन्दी साहित्य–उद्‌भव और विकास (1955)
10. रामकुमार वर्मा–हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (1938)
11. डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा–हिन्दी साहित्य (तीन खण्डों में)
12. हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास (सोलह खण्डों में)-1957 से 1984 ई0 तक।
13. डॉ0 नगेन्द्र–हिन्दी साहित्य का इतिहास (1973)य हिन्दी वाङ्मय 20वीं शती।
14. रामस्वरूप चतुर्वेदी–हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1986।
15. बच्चन सिंह–हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली(1996)।
16. डा0 मोहन अवस्थी–हिन्दी साहित्य का अद्यतन इतिहास।
17. बाबू गुलाब राय–हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास।

हिन्दी साहित्य के विकास के विभिन्न काल

हिन्दी साहित्य का आरंभ आठवीं शताब्दी से माना जाता है। यह वह समय है जब सम्राट् हर्ष की मृत्यु के बाद देश में अनेक छोटे-छोटे शासनकेन्द्र स्थापित हो गए थे जो परस्पर संघर्षरत रहा करते थे। विदेशी मुसलमानों से भी इनकी टक्कर होती रहती थी। धार्मिक क्षेत्र अस्तव्यस्त थे। इन दिनों उत्तर भारत के अनेक भागों में बौद्ध धर्म का प्रचार था। बौद्ध धर्म का विकास कई रूपों में हुआ जिनमें से एक वज्रयान कहलाया। वज्रयानी तांत्रिक थे और सिद्ध कहलाते थे। इन्होंने जनता के बीच उस समय की लोकभाषा में अपने मत का प्रचार किया। हिन्दी का प्राचीनतम साहित्य इन्हीं वज्रयानी सिद्धों द्वारा तत्कलीन लोकभाषा पुरानी हिन्दी में लिखा गया। इसके बाद नाथपंथी साधुओं का समय आता है। इन्होंने बौद्ध, शांकर, तंत्र, योग और शैव मतों के मिश्रण से अपना नया पंथ चलाया जिसमें सभी वर्गों और वर्णों के लिए धर्म का एक सामान्य मत प्रतिपादित किया गया था। लोकप्रचलित पुरानी हिन्दी में लिखी इनकी अनेक धार्मिक रचनाएँ उपलब्ध हैं। इसके बाद जैनियों की रचनाएँ मिलती हैं। स्वयंभू का 'पउमचरिउ' अथवा रामायण आठवीं शताब्दी की रचना है। बौद्धों और

नाथपंथियों की रचनाएँ मुक्तक और केवल धार्मिक हैं पर जैनियों की अनेक रचनाएँ जीवन की सामान्य अनुभूतियों से भी संबद्ध हैं। इनमें से कई प्रबंधकाव्य हैं। इसी काल में अब्दुर्रहमान का काव्य 'संदेशरासक' भी लिखा गया जिसमें परवर्ती बोलचाल के निकट की भाषा मिलती है। इस प्रकार ग्यारहवीं शताब्दी तक पुरानी हिन्दी का रूप निर्मित और विकसित होता रहा।

आदिकाल (650ई से 1350ई)

ग्यारहवीं सदी के लगभग देशभाषा हिन्दी का रूप अधिक स्फुट होने लगा। उस समय पश्चिमी हिन्दी प्रदेश में अनेक छोटे-छोटे राजपूत राज्य स्थापित हो गए थे। ये परस्पर अथवा विदेशी आक्रमणकारियों से प्राय: युद्धरत रहा करते थे। इन्हीं राजाओं के संरक्षण में रहनेवाले चारणों और भाटों का राजप्रशस्तिमूलक काव्य वीरगाथा के नाम से अभिहित किया गया। इन वीरगाथाओं को रासो कहा जाता है। इनमें आश्रयदाता राजाओं के शौर्य और पराक्रम का ओजस्वी वर्णन करने के साथ ही उनके प्रेमप्रसंगों का भी उल्लेख है। रासो ग्रन्थों में संघर्ष का कारण प्राय: प्रेम दिखाया गया है। इन रचनाओं में इतिहास और कल्पना का मिश्रण है। रासो वीरगीत (बीसलदेवरासो और आल्हा आदि) और प्रबंधकाव्य (पृथ्वीराजरासो, खुमानरासो आदि)-इन दो रूपों में लिखे गये। इन रासो ग्रन्थों में से अनेक की उपलब्ध प्रतियाँ चाहे ऐतिहासिक दृष्टि से संदिग्ध हों पर इन वीरगाथाओं की मौखिक परंपरा अंसदिग्ध है। इनमें शौर्य और प्रेम की ओजस्वी और सरस अभिव्यक्ति हुई है।

इसी कालावधि में मैथिल कोकिल विद्यापति हुए जिनकी पदावली में मानवीय सौंदर्य ओर प्रेम की अनुपम व्यंजना मिलती है। कीर्तिलता और कीर्तिपताका इनके दो अन्य प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। अमीर खुसरो का भी यही समय है। इन्होंने ठेठ खड़ी बोली में अनेक पहेलियाँ, मुकरियाँ और दो सखुन रचे हैं। इनके गीतों, दोहों की भाषा ब्रजभाषा है। आदिकाल के प्रमुख कवि और उनकी रचनाएँ अक्तूबर 02, 2009 आज हम आदिकालीन कवियों की प्रमुख कृतियों का विवरण प्रस्तुत कर रहें हैं–1. अब्दुर्रहमान–संदेश रासक 2. नरपति नाल्ह–बीसलदेव रासो (अपभ्रंश हिंदी) 3. चंदबरदायी–पृथ्वीराज रासो (डिंगल-पिंगल हिंदी) 4. दलपति विजय–खुमान रासो (राजस्थानी हिंदी) 5. जगनिक–परमाल रासो 6. शार्गधर–हम्मीर रासो 7. नल्ह सिंह–विजयपाल रासो 8. जल्ह कवि–बुद्धि रासो 9. माधवदास चारण–राम रासो 10. देल्हण–गद्य सुकुमाल रासो 11. श्रीधर–रणमल

छंद, पीरीछत रायसा 12. जिनधर्मसूरि–स्थूलिभद्र रास 13. गुलाब कवि–करहिया कौ रायसो 14. शालिभद्रसूरि–भरतेश्वर बाहुअलिरास 15. जोइन्दु–परमात्म प्रकाश 16. केदार–जयचंद प्रकाश 17. मधुकर कवि–जसमयंक चंद्रिका 18. स्वयंभू–पउम चरिउ 19. योगसार रूसानयधम्म दोहा 20. हरप्रसाद शास्त्री–बौद्धगान और दोहा 21. धनपाल–भवियत्त कहा 22. लक्ष्मीधर–प्राकृत पैंगलम 23. अमीर खुसरो–किस्सा चाहा दरवेश, खालिक बारी 24. विद्यापति–कीर्तिलता, कीर्तिपताका, विद्यापति पदावली (मैथिली)

भक्तिकाल (1375 से 1700 ई.)

तेरहवीं सदी तक धर्म के क्षेत्र में बड़ी अस्तव्यस्तता आ गई। जनता में सिद्धों और योगियों आदि द्वारा प्रचलित अंधविश्वास फैल रहे थे, शास्त्रज्ञानसंपन्न वर्ग में भी रूढ़ियों और आडंबर की प्रधानता हो चली थी। मायावाद के प्रभाव से लोकविमुखता और निष्क्रियता के भाव समाज में पनपने लगे थे। ऐसे समय में भक्तिआंदोलन के रूप में ऐसा भारतव्यापी विशाल सांस्कृतिक आंदोलन उठा जिसने समाज में उत्कर्षविधायक सामाजिक और वैयक्तिक मूल्यों की प्रतिष्ठा की।

भक्ति आंदोलन का आरंभ दक्षिण के आलवार सन्तों द्वारा दसवीं सदी के लगभग हुआ। वहाँ शंकराचार्य के अद्वैतमत और मायावाद के विरोध में चार वैष्णव संप्रदाय खड़े हुए। इन चारों संप्रदायों ने उत्तर भारत में विष्णु के अवतारों का प्रचारप्रसार किया। इनमें से एक के प्रवर्तक रामानुजाचार्य थे, जिनकी शिष्य परंपरा में आनेवाले रामानंद ने (पंद्रहवीं सदी) उत्तर भारत में रामभक्ति का प्रचार किया। रामानंद के राम ब्रह्म के स्थानापन्न थे जो राक्षसों का विनाश और अपनी लीला का विस्तार करने के लिए संसार में अवतीर्ण होते हैं। भक्ति के क्षेत्र में रामानंद ने ऊँचनीच का भेदभाव मिटाने पर विशेष बल दिया। राम के सगुण और निर्गुण दो रूपों को माननेवाले दो भक्तों-कबीर और तुलसी को इन्होंने प्रभावित किया। विष्णुस्वामी के शुद्धाद्वैत मत का आधार लेकर इसी समय वल्लभाचार्य ने अपना पुष्टिमार्ग चलाया। बारहवीं से सोलहवीं सदी तक पूरे देश में पुराणसम्मत कृष्णचरित्र के आधार पर कई संप्रदाय प्रतिष्ठित हुए, जिनमें सबसे ज्यादा प्रभावशाली वल्लभ का पुष्टिमार्ग था। उन्होंने शांकर मत के विरुद्ध ब्रह्म के सगुण रूप को ही वास्तविक कहा। उनके मत से यह संसार मिथ्या या माया का प्रसार नहीं है बल्कि ब्रह्म का ही प्रसार है, अतः सत्य है। उन्होंने कृष्ण को ब्रह्म का

अवतार माना और उसकी प्राप्ति के लिए भक्त का पूर्ण आत्मसमर्पण आवश्यक बतलाया। भगवान् के अनुग्रह या पुष्टि के द्वारा ही भक्ति सुलभ हो सकती है। इस संप्रदाय में उपासना के लिए गोपीजनवल्लभ, लीलापुरुषोत्तम कृष्ण का मधुर रूप स्वीकृत हुआ। इस प्रकार उत्तर भारत में विष्णु के राम और कृष्ण अवतारों की प्रतिष्ठा हुई।

इस प्रकार इन विभिन्न मतों का आधार लेकर हिन्दी में निर्गुण और सगुण के नाम से भक्तिकाव्य की दो शाखाएँ साथ-साथ चलीं। निर्गुणमत के दो उपविभाग हुए-ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी। पहले के प्रतिनिधि कबीर और दूसरे के जायसी हैं। सगुणमत भी दो उपधाराओं में प्रवाहित हुआ-रामभक्ति और कृष्णभक्ति। पहले के प्रतिनिधि तुलसी हैं और दूसरे के सूरदास।

ज्ञानश्रयी शाखा के प्रमुख कवि कबीर पर तात्कालिक विभिन्न धार्मिक प्रवृत्तियों और दार्शनिक मतों का सम्मिलित प्रभाव है। उनकी रचनाओं में धर्मसुधारक और समाजसुधारक का रूप विशेष प्रखर है। उन्होंने आचरण की शुद्धता पर बल दिया। बाह्याडंबर, रूढ़ियों और अंधविश्वासों पर उन्होंने तीव्र कशाघात किया। मनुष्य की क्षमता का उद्घोष कर उन्होंने निम्नश्रेणी की जनता में आत्मगौरव का भाव जगाया। इस शाखा के अन्य कवि रैदास, दादू हैं।

प्रेमाश्रयी धारा के सर्वप्रमुख कवि जायसी हैं जिनका 'पदमावत' अपनी मार्मिक प्रेमव्यंजना, कथारस और सहज कलाविन्यास के कारण विशेष प्रशंसित हुआ है। इनकी अन्य रचनाओं में 'अखरावट' और 'आखिरी कलाम' आदि हैं, जिनमें सूफी संप्रदायसंगत बातें हैं। इस धारा के अन्य कवि हैं कुतुबन, मंझन, उसमान, शेख नबी और नूर मुहम्मद आदि।

आज की दृष्टि से इस संपूर्ण भक्तिकाव्य का महत्व उसकी धार्मिकता से अधिक लोकजीवनगत मानवीय अनुभूतियों और भावों के कारण है। इसी विचार से भक्तिकाल को हिन्दी काव्य का स्वर्ण युग कहा जा सकता है।

रीतिकाल (1700 से 1900 ई.)

1700 ई. के आस पास हिन्दी कविता में एक नया मोड़ आया। इसे विशेषत: तात्कालिक दरबारी संस्कृति और संस्कृतसाहित्य से उत्तेजना मिली। संस्कृत साहित्यशास्त्र के कतिपय अंशों ने उसे शास्त्रीय अनुशासन की ओर प्रवृत्त किया। हिन्दी में 'रीति' या 'काव्यरीति' शब्द का प्रयोग काव्यशास्त्र के लिए हुआ था। इसलिए काव्यशास्त्रबद्ध सामान्य सृजनप्रवृत्ति और रस, अलंकार आदि

के निरूपक बहुसंख्यक लक्षणग्रन्थों को ध्यान में रखते हुए इस समय के काव्य को 'रीतिकाव्य' कहा गया। इस काव्य की शृंगारी प्रवृत्तियों की पुरानी परंपरा के स्पष्ट संकेत संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, फारसी और हिन्दी के आदिकाव्य तथा कृष्णकाव्य की शृंगारी प्रवृत्तियों में मिलते हैं।

रीतिकाव्य रचना का आरंभ एक संस्कृतज्ञ ने किया। ये थे आचार्य केशवदास, जिनकी सर्वप्रसिद्ध रचनाएँ कविप्रिया, रसिकप्रिया और रामचंद्रिका हैं। केशव के कई दशक बाद चिन्तामणि से लेकर अठारहवीं सदी तक हिन्दी में रीतिकाव्य का अजस्र स्रोत प्रवाहित हुआ जिसमें नर-नारी-जीवन के रमणीय पक्षों और तत्संबंधी सरस संवेदनाओं की अत्यंत कलात्मक अभिव्यक्ति व्यापक रूप में हुई।

रीतिकाल के कवि राजाओं और रईसों के आश्रय में रहते थे। वहाँ मनोरंजन और कलाविलास का वातावरण स्वाभाविक था। बौद्धिक आनंद का मुख्य साधन वहाँ उक्तिवैचित्र्य समझा जाता था। ऐसे वातावरण में लिखा गया साहित्य अधिकतर शृंगारमूलक और कलावैचित्र्य से युक्त था। पर इसी समय प्रेम के स्वच्छंद गायक भी हुए जिन्होंने प्रेम की गहराइयों का स्पर्श किया है। मात्रा और काव्यगुण दोनों ही दृष्टियों से इस समय का नर-नारी-प्रेम और सौंदर्य की मार्मिक व्यंजना करनेवाला काव्यसाहित्य महत्वपूर्ण है।

रीतिकाव्य मुख्यत: मांसल शृंगार का काव्य है। इसमें नर-नारीजीवन के स्मरणीय पक्षों का सुंदर उद्घाटन हुआ है। अधिक काव्य मुक्तक शैली में है, पर प्रबंधकाव्य भी हैं। इन दो सौ वर्षों में शृंगारकाव्य का अपूर्व उत्कर्ष हुआ। पर धीरे-धीरे रीति की जकड़ बढ़ती गई और हिन्दी काव्य का भावक्षेत्र संकीर्ण होता गया। आधुनिक युग तक आते-आते इन दोनों कमियों की ओर साहित्यकारों का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट हुआ।

आधुनिक काल (1900 से अब तक)
हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल,
आधुनिक हिंदी पद्य का इतिहास,
आधुनिक हिंदी गद्य का इतिहास

उन्नीसवीं शताब्दी

यह आधुनिक युग का आरंभ काल है जब भारतीयों का यूरोपीय संस्कृति से संपर्क हुआ। भारत में अपनी जड़ें जमाने के काम में अँगरेजी शासन ने भारतीय

जीवन को विभिन्न स्तरों पर प्रभावित और आंदोलित किया। नई परिस्थितियों के धक्के से स्थितिशील जीवनविधि का ढाँचा टूटने लगा। एक नए युग की चेतना का आरंभ हुआ। संघर्ष और सामंजस्य के नए आयाम सामने आए।

नये युग के साहित्यसृजन की सर्वोच्च संभावनाएँ खड़ी बोली गद्य में निहित थीं, इसलिए इसे गद्य-युग भी कहा गया है। हिन्दी का प्राचीन गद्य राजस्थानी, मैथिली और ब्रजभाषा में मिलता है पर वह साहित्य का व्यापक माध्यम बनने में अशक्त था। खड़ीबोली की परंपरा प्राचीन है। अमीर खुसरो से लेकर मध्यकालीन भूषण तक के काव्य में इसके उदाहरण बिखरे पड़े हैं। खड़ी बोली गद्य के भी पुराने नमूने मिले हैं। इस तरह का बहुत सा गद्य फारसी और गुरूमुखी लिपि में लिखा गया है। दक्षिण की मुसलमान रियासतों में 'दक्खिनी' के नाम से इसका विकास हुआ। अठारहवीं सदी में लिखा गया रामप्रसाद निरंजनी और दौलतराम का गद्य उपलब्ध है। पर नयी युगचेतना के संवाहक रूप में हिन्दी के खड़ी बोली गद्य का व्यापक प्रसार उन्नीसवीं सदी से ही हुआ। कलकत्ते के फोर्ट विलियम कालेज में, नवागत अँगरेज अफसरों के उपयोग के लिए, लल्लू लाल तथा सदल मिश्र ने गद्य की पुस्तकें लिखकर हिन्दी के खड़ी बोली गद्य की पूर्वपरंपरा के विकास में कुछ सहायता दी। मुंशी सदासुखलाल और इंशा अल्ला खाँ की गद्य रचनाएँ इसी समय लिखी गईं। आगे चलकर प्रेस, पत्रपत्रिकाओं, ईसाई धर्मप्रचारकों तथा नवीन शिक्षा संस्थाओं से हिन्दी गद्य के विकास में सहायता मिली। बंगाल, पंजाब, गुजरात आदि विभिन्न प्रान्तों के निवासियों ने भी इसकी उन्नति और प्रसार में योग दिया। हिन्दी का पहला समाचारपत्र 'उदंत मार्तण्ड' 1826 ई. में कलकत्ते से प्रकाशित हुआ। राजा शिवप्रसाद और राजा लक्ष्मण सिंह हिन्दी गद्य के निर्माण और प्रसार में अपने अपने ढंग से सहायक हुए। आर्यसमाज और अन्य सांस्कृतिक आंदोलनों ने भी आधुनिक गद्य को आगे बढ़ाया।

गद्यसाहित्य की विकासमान परंपरा उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध से अग्रसर हुई। इसके प्रवर्तक आधुनिक युग के प्रवर्तक और पथप्रदर्शक भारतेंदु हरिश्चंद्र थे जिन्होंने साहित्य का समकालीन जीवन से घनिष्ठ संबंध स्थापित किया। यह संक्रांति और नवजागरण का युग था। अँगरेजों की कूटनीतिक चालों और आर्थिक शोषण से जनता संत्रस्त और क्षुब्ध थी। समाज का एक वर्ग पाश्चात्य संस्कारों से आक्रांत हो रहा था तो दूसरा वर्ग रूढ़ियों में जकड़ा हुआ था। इसी समय नई शिक्षा का आरंभ हुआ और सामाजिक सुधार के आंदोलन चले। नवीन ज्ञान

विज्ञान के प्रभाव से नवशिक्षितों में जीवन के प्रति एक नया दृष्टिकोण विकसित हुआ जो अतीत की अपेक्षा वर्तमान और भविष्य की ओर विशेष उन्मुख था। सामाजिक विकास में उत्पन्न आस्था और जाग्रत समुदायचेतना ने भारतीयों में जीवन के प्रति नया उत्साह उत्पन्न किया। भारतेंदु के समकालीन साहित्य में विशेषत: गद्यसाहित्य में तत्कालीन वैचारिक और भौतिक परिवेश की विभिन्न अवस्थाओं की स्पष्ट और जीवन्त अभिव्यक्ति हुई। इस युग की नवीन रचनाएँ देशभक्ति और समाजसुधार की भावना से परिपूर्ण हैं। अनेक नई परिस्थितियों की टकराहट से राजनीतिक और सामाजिक व्यंग की प्रवृत्ति भी उद्‌बुद्ध हुई। इस समय के गद्य में बोलचाल की सजीवता है। लेखकों के व्यक्तित्त्व से संपृक्त होने के कारण उसमें पर्याप्त रोचकता आ गई है। सबसे अधिक निबंध लिखे गए जो व्यक्तिप्रधान और विचारप्रधान तथा वर्णनात्मक भी थे। अनेक शैलियों में कथासाहित्य भी लिखा गया, अधिकतर शिक्षाप्रधान। पर यथार्थवादी दृष्टि और नए शिल्प की विशिष्टता श्रीनिवास दास के 'परीक्षागुरू' में ही है। देवकीनन्दन खत्री का तिलस्मी उपन्यास 'चंद्रकांता' इसी समय प्रकाशित हुआ। पर्याप्त परिमाण में नाटकों और सामाजिक प्रहसनों की रचना हुई। भारतेंदु, प्रतापनारायण मिश्र, श्रीनिवास दास, आदि प्रमुख नाटककार हैं। साथ ही भक्ति और शृंगार की बहुत सी सरस कविताएँ भी निर्मित हुईं। पर जिन कविताओं में सामाजिक भावों की अभिव्यक्ति हुई वे ही नये युग की सृजनशीलता का आरंभिक आभास देती हैं। खड़ी बोली के छिटफुट प्रयोगों को छोड़ शेष कविताएँ ब्रजभाषा में लिखी गयीं। वास्तव में नया युग इस समय के गद्य में ही अधिक प्रतिफलित हो सका।

बीसवीं शताब्दी

इस कालावधि की सबसे महत्वपूर्ण घटनाएँ दो हैं–एक तो सामान्य काव्यभाषा के रूप में खड़ी बोली की स्वीकृति और दूसरे हिन्दी गद्य का नियमन और परिमार्जन। इस कार्य में सर्वाधिक सशक्त योग सरस्वती संपादक महावीरप्रसाद द्विवेदी का था। द्विवेदी जी और उनके सहकर्मियों ने हिन्दी गद्य की अभिव्यक्तिक्षमता को विकसित किया। निबंध के क्षेत्र में द्विवेदी जी के अतिरिक्त बालमुकुंद, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, पूर्णसिंह, पद्‌मसिंह शर्मा जैसे एक से एक सावधान, सशक्त और जीवंत गद्यशैलीकार सामने आए। उपन्यास अनेक लिखे गए पर उसकी यथार्थवादी परंपरा का उल्लेखनीय विकास न हो सका। यथार्थपरक आधुनिक कहानियाँ इसी काल में जनमी और विकासमान हुईं। गुलेरी, कौशिक आदि के

अतिरिक्त प्रेमचंद और प्रसाद की भी आरंभिक कहानियाँ इसी समय प्रकाश में आई। नाटक का क्षेत्र अवश्य सूना सा रहा। इस समय के सबसे प्रभावशाली समीक्षक द्विवेदी जी थे जिनकी संशोधनवादी और मर्यादानिष्ठ आलोचना ने अनेक समकालीन साहित्य को पर्याप्त प्रभावित किया। मिश्रबंधु, कृष्णबिहारी मिश्र और पद्मसिंह शर्मा इस समय के अन्य समीक्षक हैं पर कुल मिलाकर इस समय की समीक्षा बाह्यपक्षप्रधान ही रही।

सुधारवादी आदर्शों से प्रेरित अयोध्यासिंह उपाध्याय ने अपने 'प्रियप्रवास' में राधा का लोकसेविका रूप प्रस्तुत किया और खड़ीबोली के विभिन्न रूपों के प्रयोग में निपुणता भी प्रदर्शित की। मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत भारती' में राष्ट्रीयता और समाजसुधार का स्वर ऊँचा किया और 'साकेत' में उर्मिला की प्रतिष्ठा की। इस समय के अन्य कवि द्विवेदी जी, श्रीधर पाठक, बालमुकुंद गुप्त, नाथूराम शर्मा 'शंकर', गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' आदि हैं। ब्रजभाषा काव्यपरंपरा के प्रतिनिधि रत्नाकर और सत्यनारायण कविरत्न हैं। इस समय खड़ी बोली काव्यभाषा के परिमार्जन और सामयिक परिवेश के अनुरूप रचना का कार्य संपन्न हुआ। नए काव्य का अधिकांश विचारपरक और वर्णनात्मक है।

सन् 1920–40 के दो दशकों में आधुनिक साहित्य के अंतर्गत वैचारिक और कलात्मक प्रवृत्तियों का अनेक रूप उत्कर्ष दिखाई पड़ा। सर्वाधिक लोकप्रियता उपन्यास और कहानी को मिली। कथासाहित्य में घटनावैचित्र्य की जगह जीते जागते स्मरणीय चरित्रों की सृष्टि हुई। निम्न और मध्यवर्गीय समाज के यथार्थपरक चित्र व्यापक रूप में प्रस्तुत किए गए। वर्णन की सजीव शैलियों का विकास हुआ। इस समय के सर्वप्रमुख कथाकार प्रेमचंद हैं। वृंदावनलाल वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यास भी उल्लेख्य है। हिन्दी नाटक इस समय जयशंकर प्रसाद के साथ सृजन के नवीन स्तर पर आरोहण करता है। उनके रोमांटिक ऐतिहासिक नाटक अपनी जीवंत चारित्र्यसृष्टि, नाटकीय संघर्षों की योजना और संवेदनीयता के कारण विशेष महत्व के अधिकारी हुए। कई अन्य नाटककार भी सक्रिय दिखाई पड़े। हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में रामचंद्र शुक्ल ने सूर, तुलसी और जायसी की सूक्ष्म भावस्थितियों और कलात्मक विशेषताओं का मार्मिक उद्घाटन किया और साहित्य के सामाजिक मूल्यों पर बल दिया। अन्य आलोचक हैं श्री नंददुलारे वाजपेयी, डा. नगेंद्र तथा डा. हजारीप्रसाद द्विवेदी।

काव्य के क्षेत्र में यह छायावाद के विकास का युग है। पूर्ववर्ती काव्य वस्तुनिष्ठ था, छायावादी काव्य भावनिष्ठ है। इसमें व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों का

प्राधान्य है। स्थूल वर्णन विवरण के स्थान पर छायावादी काव्य में व्यक्ति की स्वच्छंद भावनाओं की कलात्मक अभिव्यक्ति हुई। स्थूल तथ्य और वस्तु की अपेक्षा बिंबविधायक कल्पना छायावादियों को अधिक प्रिय है। उनकी सौंदर्यचेतना विशेष विकसित है। प्रकृतिसौंदर्य ने उन्हें विशेष आकृष्ट किया। वैयक्तिक संवेगों की प्रमुखता के कारण छायावादी काव्य मूलतः प्रगीतात्मक है। इस समय खड़ी बोली काव्यभाषा की अभिव्यक्तिक्षमता का अपूर्व विकास हुआ। जयशंकर प्रसाद, माखनलाल, सुमित्रनंदन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', महादेवी, नवीन और दिनकर छायावाद के उत्कृष्ट कवि हैं।

सन् 1940 के बाद छायावाद की संवेगनिष्ठ, सौंदर्यमूलक और कल्पनाप्रिय व्यक्तिवाद प्रवृत्तियों के विरोध में प्रगतिवाद का संघबद्ध आंदोलन चला जिसकी दृष्टि समाजबद्ध, यथार्थवादी और उपयोगितावादी है। सामाजिक वैषम्य और वर्गसंघर्ष का भाव इसमें विशेष मुखर हुआ। इसने साहित्य को सामाजिक क्रांति के अस्त्र के रूप में ग्रहण किया। अपनी उपयोगितावादी दृष्टि की सीमाओं के कारण प्रगतिवादी साहित्य, विशेषतः कविता में कलात्मक उत्कर्ष की संभावनाएँ अधिक नहीं थीं, फिर भी उसने साहित्य के सामाजिक पक्ष पर बल देकर एक नई चेतना जाग्रत की।

प्रगतिवादी आंदोलन के आरंभ के कुछ ही बाद नए मनोविज्ञान या मनोविश्लेषणशास्त्र से प्रभावित एक और व्यक्तिवादी प्रवृत्ति साहित्य के क्षेत्र में सक्रिय हुई थी जिसे सन् 1943 के बाद प्रयोगवाद नाम दिया गया। इसी का संशोधित रूप वर्तमानकालीन नई कविता और नई कहानियाँ हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि द्वितीय महायुद्ध और उसके उत्तरकालीन साहित्य में जीवन की विभीषिका, कुरूपता और असंगतियों के प्रति अंसतोष तथा क्षोभ ने कुछ आगे पीछे दो प्रकार की प्रवृत्तियों को जन्म दिया। एक का नाम प्रगतिवाद है, जो मार्क्स के भौतिकवादी जीवनदर्शन से प्रेरणा लेकर चला, दूसरा प्रयोगवाद है, जिसने परंपरागत आदर्शों और संस्थाओं के प्रति अपने अंसतोष की तीव्र प्रतिक्रियाओं को साहित्य के नवीन रूपगत प्रयोगों के माध्यम से व्यक्त किया। इस पर नए मनोविज्ञान का गहरा प्रभाव पड़ा।

प्रगतिवाद से प्रभावित कथाकारों में यशपाल, उपेंद्रनाथ अश्क, अमृतलाल नागर और नागार्जुन आदि विशिष्ट हैं। आलोचकों में रामविलास शर्मा, नामवर सिंह, विजयदेव नारायण साही प्रमुख हैं। कवियों में केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, रांगेय राघव, शिवमंगल सिंह 'सुमन' आदि के नाम प्रसिद्ध हैं। निबन्ध विधा में

इस दौर में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, विद्या निवास मिश्र और कुबेरनाथ राय ने विशेष ख्याति अर्जित की।

नए मनोविज्ञान से प्रभावित प्रयोगों के लिए सचेष्ट कथाकारों में अज्ञेय प्रमुख हैं। मनोविज्ञान से गंभीर रूप में प्रभावित इलाचंद्र जोशी और जैनेंद्र हैं। इन लेखकों ने व्यक्तिमन के अवचेतन का उद्‌घाटन कर नया नैतिक बोध जगाने का प्रयत्न किया। जैनेंद्र और अज्ञेय ने कथा के परंपरागत ढाँचे को तोड़कर शैलीशिल्प संबंधी नए प्रयोग किए। परवर्ती लेखकों और कवियों में वैयक्तिक प्रतिक्रियाएँ अधिक प्रखर हुईं। समकालीन परिवेश से वे पूर्णत: संसक्त हैं। उन्होंने समाज और साहित्य की मान्यताओं पर गहरा प्रश्नचिह्न लगा दिया है। व्यक्तिजीवन की लाचारी, कुंठा, आक्रोश आदि व्यक्त करने के साथ ही वे वैयक्तिक स्तर पर नए जीवनमूल्यों के अन्वेषण में लगे हुए हैं। उनकी रचनाओं में एक ओर सार्वभौम संत्रास और विभीषिका की छटपटाहट है तो दूसरी ओर व्यक्ति के अस्तित्त्व की अनिवार्यता और जीवन की संभावनाओं को रेखांकित करने का उपक्रम भी। हमारा समकालीन साहित्य आत्यंतिक व्यक्तिवाद से ग्रस्त है और यह उसकी सीमा है। पर उसका सबसे बड़ा बल उसकी जीवनमयता है जिसमें भविष्य की सशक्त संभावनाएँ निहित हैं।

हिन्दी एवं उसके साहित्य का इतिहास

1. 750 ईसा पूर्व-संस्कृत का वैदिक संस्कृत के बाद का क्रमबद्ध विकास।
2. 500 ईसा पूर्व-बौद्ध तथा जैन की भाषा प्राकृत का विकास (पूर्वी भारत)।
3. 400 ईसा पूर्व-पाणिनि ने संस्कृत व्याकरण लिखा (पश्चिमी भारत)। वैदिक संस्कृत से पाणिनि की काव्य संस्कृत का मानकीकरण।

ब्राह्मी लिपि का विकास

1. पाँचवीं सदी ईसा पूर्व से पहले-भारत में ब्राह्मी लिपि का विकास।
2. पाँचवीं सदी ई0पू0 से 350ई0-ब्राह्मी लिपि का ज्ञात प्रयोग काल।
3. 320 ई0 (के आसपास)-ब्राह्मी लिपि से गुप्त लिपि का विकास।

छठी सदी ईस्वी-सिद्धमात्रिका लिपि का गुप्त लिपि की पश्चिमी शाखा की पूर्वी उपशाखा से विकास। इसे न्यूनकोणीय लिपि भी कहा गया है।

अपभ्रंश तथा आदि-हिन्दी का विकास

1. प्रथम सदी ई0पू0/5वीं सदी ई0-कालिदास ने 'विक्रमोवर्शीयम्' में अपभ्रंश का प्रयोग किया।
2. 550ई0-वल्लभी के दर्शन में अपभ्रंश का प्रयोग।
3. 769-सिद्ध सरहपाद (जिन्हें कई लोग हिन्दी का पहला कवि मानते हैं) ने 'दोहाकोश' लिखा।
4. 779-उद्योतन सूरि की 'कुवलयमाला' में अपभ्रंश का प्रयोग।
5. 800-संस्कृत में बहुत सी रचनाएँ लिखी गयीं।
6. 933-देवसेन की 'सावयधम्म दोहा' (श्रावकधर्म दोहा या श्रावकाचार) 'कुछ लोग इसे भी हिन्दी की पहली पुस्तक मानते हैं'।
7. 1100-आधुनिक देवनागरी लिपि का प्रथम स्वरूप।
8. 1145-1229-हेमचंद्राचार्य ने सिद्ध हेम शब्दानुशासन नामक अपभ्रंश-व्याकरण की रचना की।

अपभ्रंश का अस्त तथा आधुनिक हिन्दी का विकास

1184 ई0-शालिभद्र सूरि रचित भरतेश्वर बाहुबलि रास 205 छंदों का आकार में छोटा परंतु शब्द-चयन एवं भाव सभी दृष्टियों से अत्यंत उत्तम काव्य है। पुष्ट तर्कों से यही हिंदी की पहली रचना सिद्ध होती है।

1253-1325-अमीर खुष्सरो की पहेलियों तथा मुकरियों में 'हिन्दवी' शब्द का सर्वप्रथम उपयोग।

1370-'हंसाउली' (हंसावली) के कवि असाइत ने प्रेम कथाओं की शुरुआत की।

1399-1512-कबीर की रचनाओं ने निर्गुण भक्ति की नींव रखी।

1400-1479-अपभ्रंश के आखिरी महान् कवि रइधू।

1450-रामानन्द के साथ 'सगुण भक्ति' की शुरुआत।

1580-शुरुआती दक्खिनी का कार्य 'कालमितुल हकायतष्कृबुरहानुद्दीन जानम द्वारा।

1585-नाभादास ने 'भक्तमाल' लिखी।

1601-बनारसीदास ने हिन्दी की पहली आत्मकथा 'अर्ध कथानक' लिखी।

1604–गुरू अर्जुन देव ने कई कवियों की रचनाओं का संकलन 'आदि ग्रन्थ' निकाला।

1532–1623–गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामचरित मानस' की रचना की।

1623–जटमल ने 'गोरा बादल री बात' (कुछ लोगों के विचार से खड़ी बोली की पहली रचना) लिखी।

1643–आचार्य केशव दास ने 'रीति' के द्वारा काव्य की शुरुआत की।

1645–उर्दू का आरंभ

आधुनिक हिन्दी

1796–देवनागरी रचनाओं की शुरुआती छ्पाई।

1826–'उदन्त मार्तण्ड' हिन्दी का पहला साप्ताहिक।

1837–ओम् जय जगदीश के रचयिता श्रद्धाराम फुल्लौरी का जन्म।

1868–राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' का लिपि सम्बन्धी प्रतिवेदन – फारसी लिपि के स्थान पर नागरी लिपि और हिन्दी भाषा के लिए पहला प्रयास राजा शिवप्रसाद का उनके लिपि सम्बन्धी प्रतिवेदन कोर्ट कैरेक्टर इन द अपर प्रोविन्स ऑफ इंडिया से आरम्भ हुआ।

1877–अयोध्या प्रसाद खत्री का हिन्दी व्याकरण, (बिहार बन्धु प्रेस)

1881–वर्ष 1881 ई. तक आते–आते उत्तर प्रदेश के पड़ोसी प्रान्तों बिहार, मध्य प्रदेश में नागरी लिपि और हिन्दी प्रयोग की सरकारी आज्ञा जारी हो गई तो उत्तर प्रदेश में नागरी आंदोलन को बड़ा नैतिक प्रोत्साहन मिला।

1893–काशी नागरीप्रचारिणी सभा की स्थापना

1 मई 1910–नागरी प्रचारिणी सभा के तत्त्वावधान में हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना हुई।

1950–हिन्दी भारत की राजभाषा के रूप में स्थापित।

10–14 जनवरी 1975–नागपुर में प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन आयोजन

दिसम्बर, 1993–मॉरीशस में चतुर्थ विश्व हिन्दी सम्मेलन तथा उसके बाद विश्व हिन्दी सचिवालय की स्थापना

1997–वर्धा में महात्मा गांधी अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय की स्थापना का अधिनियम संसद द्वारा पारित

2000–आधुनिक हिंदी का अनतरराष्ट्रीय विकास

5

वैदिक संस्कृत

वैदिक संस्कृत 2000 ईसापूर्व (या उस से भी पहले) से लेकर 600 ईसापूर्व तक बोली जाने वाली एक हिन्द-आर्य भाषा थी। यह संस्कृत की पूर्वज भाषा थी और आदिम हिन्द-ईरानी भाषा की बहुत ही निकट की संतान थी। उस समय फारसी और संस्कृत का विभाजन बहुत नया था, इसलिए वैदिक संस्कृत और अवस्ताई भाषा (प्राचीनतम ज्ञात ईरानी भाषा) एक-दूसरे के बहुत करीब हैं। वैदिक संस्कृत हिन्द-यूरोपीय भाषा-परिवार की हिन्द-ईरानी भाषा शाखा की सब से प्राचीन प्रमाणित भाषा है।

हिन्दुओं के प्राचीन वेद धर्मग्रन्थ वैदिक संस्कृत में लिखे गए हैं। भारतीय उपमहाद्वीप में श्रौत जैसे सख्त नियमित ध्वनियों वाले मंत्रोच्चारण की हजारों वर्षों पुरानी परम्परा के कारण वैदिक संस्कृत के शब्द और उच्चारण इस क्षेत्र में लिखाई आरम्भ होने से बहुत पहले से सुरक्षित हैं। वेदों के अध्ययन से देखा गया है कि वैदिक संस्कृत भी सैंकड़ों सालों के काल में बदलती गई। ऋग्वेद की वैदिक संस्कृत, जिसे ऋग्वैदिक संस्कृत कहा जाता है, सब से प्राचीन रूप है। पाणिनि के नियमिकरण के बाद की शास्त्रीय संस्कृत और वैदिक संस्कृत में काफी अंतर है इसलिए वेदों को मूल रूप में पढ़ने के लिए संस्कृत ही सीखना पार्याप्त नहीं बल्कि वैदिक संस्कृत भी सीखनी पढ़ती है। अवस्ताई फारसी सीखने वाले विद्वानों को भी वैदिक संस्कृत सीखनी पड़ती है क्योंकि अवस्ताई ग्रन्थ कम बचे हैं और वैदिक सीखने से उस भाषा का भी अधिक विस्तृत बोध मिल जाता है।

लौकिक संस्कृत का वैदिक संस्कृत से भेद

लौकिक संस्कृत–साहित्य का वैदिक साहित्य से अनेक प्रकार का भेद पाया जाता है। वैदिक साहित्य शुद्धतः धार्मिक है तथा इसमें सभी लौकिक तत्त्वों का बीज समाहित है। लौकिक संस्कृत साहित्य प्रधान रूप से धार्मिक–धर्ममनिरपेक्ष है अथवा धर्म में इसे लोक–परलोक से ही सम्बन्धित कहा जा सकता है। इस साहित्य में महाकाव्य (रामायण एवं महाभारत), पुराण एवं अन्य काव्य (जिनमें गद्यकाव्य भी सम्मिलित हैं) नाटक, अलंकारशास्त्र, दर्शन, सूत्र, विधि अथवा नियम, कला, वास्तुशास्त्र, औषधि (आयुर्वेद), गणित, मशीन, उद्योग सम्बन्धी ग्रंथ और अन्य विभिन्न विद्याओं की शाखाएं भी प्राप्त होती हैं।

लौकिक साहित्य की भाषा तथा वैदिक साहित्य की भाषा में भी अन्तर पाया जाता है। दोनों के शब्दरूप तथा धातुरूप अनेक प्रकार से भिन्न हैं। वैदिक संस्कृत के रूप केवल भिन्न ही नहीं हैं अपितु अनेक भी हैं, विशिष्टतया वे रूप जो क्रिया रूपों तथा धातुओं के स्वरूप से सम्बन्धित हैं। इस सम्बन्ध में दोनों साहित्यों की कुछ महत्त्वपूर्ण भिन्नताएँ निम्नलिखित हैं–

(1) शब्दरूप की दृष्टि से–उदाहरणार्थ, लौकिक संस्कृत में केवल ऐसे रूप बनते हैं जैसे देवाः जनाः (प्रथम विभक्ति बहुवचन)। जबकि वैदिक संस्कृत में इनमें रूप 'देवासः', 'जनामः' भी बनते हैं। इसी प्रकार, प्रथमा तथा द्वितीया विभक्ति बहुवचन में 'विश्वानि' रूप वैदिक साहित्य में 'विश्वा' भी बन जाता है। तृतीय बहुवचन में वैदिक संस्कृत में 'देवैः' इस रूप के साथ–साथ 'देवेभिः' भी मिलता है। इसी प्रकार सप्तमी विभक्ति एकवचन में 'व्योम्नि' अथवा 'व्योमनि' इन रूपों के साथ–साथ वैदिक संस्कृत में 'व्योमन्' यह रूप भी प्राप्त होता है।

(2) वैदिक तथा लौकिक संस्कृत में क्रियारूपों और धातुरूपों में भी विशेष अन्तर है। वैदिक संस्कृत इस विषय में कुछ अधिक समृद्ध है तथा उसमें कुछ और रूपों को उपलब्धि होती है जबकि लौकिक संस्कृत में क्रिया पदों की अवस्था बताने वाले ऐसे केवल दो ही लकार हैं–लोट् और विधिलिंग जोक लट्प्रकृति अर्थात् वर्तमानकाल की धातु से बनते हैं।

उदाहरणार्थ पठ् से पठतु और पठेत् ये दोनों बनते हैं। वैदिक संस्कृत में क्रियापदों की अवस्था को द्योतित करने वाले दो और अधिक लकार हैं–लेट् लकार एवं निषेधात्मक लुंलकार (Injunctive) (जो लौकिक संस्कृत में केवल

निषेधार्थक 'मा' से प्रदर्शित होता है और जो लकार लौकिक संस्कृत में पूर्णत: अप्राप्य है।) इन चारों अवस्थाओं के द्योतक लकार वैदिक संस्कृत में केवल लट् प्रकृति से ही नहीं बनते हैं, किन्तु लिट् प्रकृति और लुं प्रकृति से भी बनते हैं। इस प्रकार वैदिक संस्कृत में धातुरूप अत्यधिक मात्रा में हैं। इसके अतिरिक्त लिं प्रत्यय सम्बन्धी भेद वैदिक संस्कृत में पाये जाते हैं जैसे मिनीमसि भी (लट्, उत्तम पुरुष बहुवचन में) प्रयुक्त होता है, परन्तु लौकिक संस्कृत में 'मिनीमही' प्रयुक्त होता है। जहाँ तक धातु से बने हुए अन्य रूपों का प्रश्न है, लौकिक संस्कृत में केवल एक ही 'तुमुन्' (जैसे गन्तुम्) मिलता है जबकि वैदिक संस्कृत में इसके लगभग एक दर्जन रूप मिलते हैं जैसे गन्तवै, गमध्यै, जीवसै, दातवै इत्यादि।

(3) पुनश्च, लौकिक संस्कृत आगे चलकर अधिकाधिक कृत्रिम अथवा सुबद्ध होती गई है और इसके उदाहरण हमें सुबन्धु और बाणभट्ट के गद्यकाव्यों में प्रयुक्त भयावह समासों में मिलते हैं। इस कला में वह अपने क्षेत्र के अन्य गद्यकारों से अत्यन्त उत्कृष्ट हैं।

(4) कुछ वैदिक शब्द लौकिक संस्कृत में अप्राप्य हैं और कुछ नये शब्दों का उद्भव भी हो गया है। उदाहरणार्थ, वैदिक शब्द 'अपस्' का 'कार्य' के अर्थ में प्रयोग लौकिक संस्कृत में लुप्त हो गया है। लौकिक संस्कृत में प्रयुक्त 'परिवार' शब्द वैदिक संस्कृत में अनुपलब्ध है। यह वैदिक एवं लौकिक संस्कृत की अपनी विशेषता है।

शब्दार्थ विज्ञान की दृष्टि से कुछ शब्दों में एक विशिष्ट परिवर्तन हुआ है जैसे 'ऋतु' जिसका वैदिक संस्कृत में अर्थ है 'शक्ति' और लौकिक संस्कृत में उसका अर्थ 'यज्ञ' हो गया है।

ध्वनि अंतर

वैदिक संस्कृत में 'फ' (अंग्रेजी: f, अ.ध.व.रू ख,) और 'ख' (अ.ध.व. रू ख़,) की ध्वनियाँ थीं जो बाद की संस्कृत में खोई गई। इसमें 'ख' के उच्चारण पर ध्यान दें क्योंकि यह 'ख' से बहुत भिन्न है, और 'खराब' और 'खघस' जैसे शब्दों में मिलती है। आधुनिक काल में एक गलत धारणा है कि 'फ' और 'ख' की ध्वनियाँ संस्कृत-परम्परा में विदेशज हैं। वर्गीकरण की दृष्टि से 'फ' को 'उपमानीय' और 'ख' को 'जिह्वामूलीय' कहा जाता है। 'ख' की ध्वनि को विसर्ग में अघोष कण्ठ्य वर्णों से पहले उच्चारित किया जाता था।

अन्य अन्तर

भाषा में परिवर्तन के अतिरिक्त दोनों साहित्यों में कुछ और भिन्नताएँ प्राप्य हैं–

(1) प्रथमतः, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, वैदिक साहित्य, प्रधानतः धार्मिक है जब कि लौकिक संस्कृत अपने वर्ण्यविषय की दृष्टि से धर्म के साथ-साथ लौकिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से सम्बद्ध है।

(2) दोनों की आत्मा यद्यपि अभिन्न है तथापि अभिन्नता में भी भिन्नता के दर्शन होते हैं। वैदिक वाङ्मय, मुख्यतः जैसा कि ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में हमें प्राप्त होता है, आशावादी है जबकि लौकिक संस्कृत साहित्य निराशावादी है, इस निराशावाद की झलक बौद्धों के 'सर्व दुःखं' में भी है। बौद्धों के व्यवहार्यपक्ष 'करुणा' और 'मैत्री' का उद्घोष भी वैदिक साहित्य की मौलिकता है।

(3) वैदिक धर्म भी परवर्ती काल में अव्यक्त रूप से विशिष्ट परिवर्धित हुआ दिखाई देता है। यहाँ तक कि वैदिक युग के प्रधान देवता जैसे इन्द्र, अग्नि, वरुण को लौकिक संस्कृत में अपेक्षाकृत विशिष्टता प्राप्त नहीं हुई परन्तु ब्रह्मा, विष्णु और शिव इन तीनों को वेदों में केवल गौण स्थान ही प्राप्त था, परवर्ती काल में इन्हें एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो गया। इस काल में कुछ नए देवी देवताओं–गणेश, कुबेर, लक्ष्मी और दुर्गा इत्यादि का भी वैदिक मूल से विकास हुआ।

(4) परवर्ती, विशेषतः आठवीं और नवीं शताब्दी के बाद के, कवियों में अत्युक्ति का आश्रय ग्रहण करने की ओर अधिक झुकाव है, जैसे माघ, श्रीहर्ष आदि में जबकि पूर्ववर्ती कवियों जैसे अश्वघोष (बौद्ध कवि), भास और कालिदास में अत्युक्ति का अभाव है। वैदिक वाङ्मय में अत्युक्ति का महा अभाव है।

(5) लौकिक संस्कृति में छन्दोबद्ध रूपों के प्रयोगों की ओर हमें एक विशिष्ट आग्रह दिखायी देता है। वैदिक युग में भी छन्दोबद्ध रूपों का आधिक्य मिलता है, किन्तु वहां विशेषतः यज्ञ सम्बन्धी साहित्य में गद्य का भी प्रयोग हुआ, जैसे यजुर्वेद और ब्राह्मणों में। लौकिक संस्कृत काल में छन्दोबद्ध रूपों के प्रयोग की ओर इतना अधिक झुकाव है कि यहाँ तक कि वैद्यक ग्रन्थ (चरकसंहिता, सुश्रुतसंहिता इत्यादि) भी पद्य में ही लिखे गये। आश्चर्य तो इस बात से होता है कि कोशों की रचना (जैसे

अमरकोश) भी छन्दों में ही हुई। कुछ आगे चलकर परवर्ती काल में बाण और सुबन्धु ने गद्य काव्यों के लेखन की शैली का विकास किया, जो कि बड़े-बड़े समासों से मिश्रित होने के कारण अत्यन्त कृत्रिम कही जाती है। इसके अतिरिक्त पूर्ववर्ती काल में सूत्र-रूप में दार्शनिक ग्रंथों को लिखने की प्रणाली का भी प्रचलन हुआ।

आगे चलकर हमें छन्दों की प्रणाली का भी एक परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। वैदिक छन्द जगती, त्रिष्टुभ, अनुष्टुभ तो लौकिक संस्कृत में सर्वथा अनुपलब्ध है। जबकि लौकिक संस्कृत के छन्द वंशस्थ, उपेन्द्रवज्रा, शिखरिणी आदि वेदों में पूर्णतः अप्राप्य हैं। हां, यह अवश्य सच है कि लौकिक संस्कृत में प्रयुक्त श्लोक छन्द वैदिक अनुष्टुभ् छन्द का ही रूप हैं।

वैदिक एवं लौकिक संस्कृत की भिन्नताओं की ओर दृष्टिपात करते हुए यह ध्यान देना आवश्यक है कि सिद्धान्त की दृष्टि से दोनों एक दूसरे से काफी मिलती-जुलती हैं। वेदों में कुछ और अधिक ध्वनियां मिलती हैं, जैसे कि ळ। अन्य ध्वनि-सिद्धान्त दोनों के समान ही हैं और उनमें कोई भी वैसा अन्तर नहीं दिखायी देता जैसा कि प्राकृत बोलियों में हमें प्राप्त होता है।

अवस्ताई फारसी और वैदिक संस्कृत की तुलना

19वीं शताब्दी में अवस्ताई फारसी और वैदिक संस्कृत दोनों पर पश्चिमी विद्वानों की नजर नई-नई पड़ी थी और इन दोनों के गहरे सम्बन्ध का तथ्य उनके सामने जल्दी ही आ गया। उन्होंने देखा के अवस्ताई फारसी और वैदिक संस्कृत के शब्दों में कुछ सरल नियमों के साथ एक से दूसरे को अनुवादित किया जा सकता था और व्याकरण की दृष्टि से यह दोनों बहुत नजदीक थे। सन् 1892 में प्रकाशित किताब 'अवस्ताई व्याकरण की संस्कृत से तुलना और अवस्ताई वर्णमाला और उसका लिप्यन्तरण' में भाषावैज्ञानिक और विद्वान एब्राहम जैक्सन ने उदहारण के लिए एक अवस्ताई धार्मिक श्लोक का वैदिक संस्कृत में सीधा अनुवाद किया -

मूल अवस्ताई

वैदिक संस्कृत अनुवाद
तम अमवन्तम यजतम
सूरम दामोहु सविश्तम

मिथ्रम यजाइ जओथ्राब्यो
तम आमवन्तम यजताम
शूरम धामसू शाविष्ठम
मित्रम यजाइ होत्रभ्य:

वैदिक साहित्य हिन्दू धर्म के प्राचीनतम स्वरूप पर प्रकाश डालने वाला तथा विश्व का प्राचीनतम् स्रोत है। वैदिक साहित्य को 'श्रुति' कहा जाता है, क्योंकि (सृष्टि/नियम)कर्ता ब्रह्मा ने विराटपुरुष भगवान् की वेदध्वनि को सुनकर ही प्राप्त किया है। अन्य ऋषियों ने भी इस साहित्य को श्रवण-परम्परा से ही ग्रहण किया था।

वेद के मुख्य मन्त्र भाग को संहिता कहते हैं। वैदिक साहित्य के अन्तर्गत ऊपर लिखे सभी वेदों के कई उपनिषद, आरण्यक तथा उपवेद आदि भी आते जिनका विवरण नीचे दिया गया है। इनकी भाषा संस्कृत है जिसे अपनी अलग पहचान के अनुसार वैदिक संस्कृत कहा जाता है-इन संस्कृत शब्दों के प्रयोग और अर्थ कालान्तर में बदल गए या लुप्त हो गए माने जाते हैं। ऐतिहासिक रूप से प्राचीन भारत और हिन्दू-आर्य जाति के बारे में इनको एक अच्छा सन्दर्भ माना जाता है। संस्कृत भाषा के प्राचीन रूप को लेकर भी इनका साहित्यिक महत्व बना हुआ है।

रचना के अनुसार प्रत्येक शाखा की वैदिक शब्द-राशि का वर्गीकरण-चार भाग होते हैं। पहले भाग (संहिता) के अलावा हरेक में टीका अथवा भाष्य के तीन स्तर होते हैं। कुल मिलाकर ये हैं–

संहिता (मन्त्र भाग)

ब्राह्मण-ग्रन्थ (गद्य में कर्मकाण्ड की विवेचना)

आरण्यक (कर्मकाण्ड के पीछे के उद्देश्य की विवेचना)

उपनिषद (परमेश्वर, परमात्मा-ब्रह्म और आत्मा के स्वभाव और सम्बन्ध का बहुत ही दार्शनिक और ज्ञानपूर्वक वर्णन)

जब हम चार वेदों की बात करते हैं तो उससे संहिता भाग का ही अर्थ लिया जाता है। उपनिषद (ऋषियों की विवेचना), ब्राह्मण (अर्थ) आदि मंत्र भाग (संहिता) के सहायक ग्रंथ समझे जाते हैं। वेद 4 हैं-ऋक, साम, यजु: और अथर्व।

वैदिक साहित्य का काल

इस विषय के विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है कि वेदों की रचना कब हुई और उनमें किस काल की सभ्यता का वर्णन मिलता है। भारतीय वेदों को अपौरुषेय (किसी पुरुष द्वारा न बनाया हुआ) मानते हैं अत: नित्य होने से उनके काल-निर्धारण का प्रश्न ही नहीं उठता, किन्तु पश्चिमी विद्वान इन्हें ऋषियों की रचना मानते हैं और इसके काल के सम्बन्ध में उन्होंने अनेक कल्पनाएँ की हैं। उनमें पहली कल्पना मैक्समूलर की है। उन्होंने वैदिक साहित्य का काल 1200 ई. पू. से 600 ई. पू. माना है। दूसरी कल्पना जर्मन विद्वान मारिज विण्टरनित्ज की है। उसने वैदिक साहित्य के आरम्भ होने का काल 2500-2000 ई. पू. तक माना। तिलक और अल याकुबी ने वैदिक साहित्य में वर्णित नक्षत्रों की स्थिति के आधार पर इस साहित्य का आरम्भ काल 4500 ई.पू. माना। श्री अविनाशचन्द्र दास तथा पावगी ने ऋग्वेद में वर्णित भूगर्भ-विषयक साक्षी द्वारा ऋग्वेद को कई लाख वर्ष पूर्व का ठहराया है।

वैदिक साहित्य का वर्गीकरण

वैदिक साहित्य निम्न भागों में बँटा है-
(1) संहिता, (2) ब्राह्मण, (3) आरण्यक, (4) उपनिषद्
और (1) वेदांग (2) सूत्र-साहित्य

संहिता

संहिता का अर्थ है संग्रह। संहिताओं में विभिन्न देवताओं के स्तुतिपरक मंत्रों का संकलन है। संहिताएँ चार हैं-(1) ऋक् (2) यजु', (3) साम और (4) अथर्व प्राचीन परम्परा के अनुसार वेद नित्य और अपौरुषेय हैं। उनकी कभी मनुष्य द्वारा रचना नहीं हुई। सृष्टि के प्रारम्भ में परमात्मा ने इनका प्रकाश अग्नि, वायु आदित्य और अंगिरा नामक ऋषियों को दिया। प्रत्येक वैदिक मन्त्र का देवता और ऋषि होता है। मन्त्र में जिसकी स्तुति की जाय वह उस मन्त्र का देवता है और जिसने मन्त्र के अर्थ का सर्वप्रथम प्रदर्शन किया हो वह उसका ऋषि है। पाश्चात्य विद्वान ऋषियों को ही वेद-मन्त्रों का रचयिता मानते हैं। वैदिक साहित्य को श्रुति भी कहा जाता है, क्योंकि पुराने ऋषियों ने इस साहित्य को श्रवण-परम्परा से ग्रहण किया था। बाद में इस ज्ञान को स्मरण करके जो ग्रन्थ लिखे गए, वे स्मृति कहलाए। श्रुति के शीर्ष स्थान पर उपर्युक्त चार संहिताएँ हैं।

ऋग्वेद

ऋग्वेद में 10,627 मन्त्र और 1,028 सूक्त हैं, ये दस मण्डलों में विभक्त हैं। सूक्तों में देवताओं की स्तुतियाँ हैं। ये बड़ी भव्य, उदात्त और काव्यमयी हैं। इनमें कल्पना की नवीनता, वर्णन की प्रौढ़ता और प्रतिभा की ऊँची उड़ान मिलती है। 'उषा' आदि कई देवताओं के वर्णन बड़े हृदयग्राही हैं। पाश्चात्य विद्वान ऋग्वेद की संहिता को सबसे प्राचीन मानते हैं। उनका विचार है कि इसके अधिकांश सूक्तों की रचना पंजाब में हुई। उस समय आर्य अफगानिस्तान से गंगा-यमुना तक के प्रदेशों में फैले हुए थे। उनके मत में ऋग्वेद में कुभा (काबुल), सुवास्तु (स्वात), क्रमु (कुर्रम), गोमती (गोमल), सिन्धु, गंगा, यमुना सरस्वती तथा पंजाब की पाँच नदियों शतुद्रि (सतलुज), विपाशा (व्यास), परुष्णी (रावी), असिवनी (चनाब) और वितस्ता (झेलम) का उल्लेख है। इन नदियों से सिंचित प्रदेश भारत में आर्य-सभ्यता का जन्म-स्थान माना जाता है।

यजुर्वेद

इसमें यज्ञ-विषयक मन्त्रों का संग्रह है। इनका प्रयोग यज्ञ के समय अध्वर्यु नामक पुरोहित किया करता था। यजुर्वेद में 40 अध्याय हैं। तथा 1975 मन्त्र निहित हैं। पाश्चात्य विद्वान इसे ऋग्वेद से काफी समय बाद का मानते हैं। ऋग्वेद में आर्यों का कार्य-क्षेत्र पंजाब है, इसमें कुरु-पांचाल। कुरु सतलुज यमुना का मध्यवर्ती भू-भाग (वर्तमान अम्बाला डिवीजन) है और पांचाल गंगा-यमुना का दोआब था। इसी समय से गंगा-यमुना का प्रदेश आर्य-सभ्यता का केन्द्र हो गया। ऋग्वेद का धर्म उपासना-प्रधान था, किन्तु यजुर्वेद के दो भेद हैं-कृष्ण यजु और शुक्ल यजु'। दोनों के स्वरूप में बड़ा अन्तर है, पहले में केवल मन्त्रों का संग्रह है और दूसरे में छन्दोबद्ध मन्त्रों के साथ गद्यात्मक भाग सभी है।

सामवेद

इसमें गेय मन्त्रों का संग्रह है। यज्ञ के अवसर पर जिस देवता के लिए होम किया जाता था, उसे बुलाने के लिए उद्गाता उचित स्वर में उस देवता का स्तुति-मन्त्र गाता था। इस गायन को 'साम' कहते थे। प्रायः ऋचाएँ ही गाई जाती थीं। अतः समस्त सामवेद में ऋचाएँ ही हैं। इनकी संख्या 1,875 है। इनमें से केवल 75 ही नई हैं, बाकी सब ऋग्वेद से ली गई हैं। भारतीय संगीत का मूल सामवेद में उपलब्ध होता है।

अथर्ववेद

अथर्ववेद का यज्ञों से बहुत कम सम्बन्ध है। इसमें आयुर्वेद सम्बन्धी सामग्री अधिक है। इसका प्रतिपाद्य विषय विभिन्न प्रकार की औषधियाँ, ज्वर, पीलिया, सर्पदंश, विष-प्रभाव को दूर करने के मन्त्र सूर्य की स्वास्थ्य-शक्ति, रोगोत्पादक कीटाणुओं के शमन अदि का वर्णन है, इस वेद में यज्ञ करने के लाभ को तथा यज्ञ से पर्यावरण की रक्षा का भी वर्णन है। वे इसमें आर्य और अनार्य धार्मिक विचारों का सम्मिश्रण देखते हैं, किन्तु वस्तुतः इसमें राजनीति तथा समाज-शास्त्र के अनेक ऊँचे सिद्धान्त हैं। इसमें 20 काण्ड, 34 प्रपाठक, 111 अनुवाक, 731 सूक्त तथा 5,977 मन्त्र हैं, इनमें 1200 के लगभग मन्त्र ऋग्वेद से लिए गए हैं। ऊपर कहे गए चारों संहिताएं पहले एक ही जगह थे। वेदव्यास जी ने यज्ञसिद्धि के लिए चार भागों में विभाजन किया था।

वेदों की शाखाएँ

प्राचीन काल में वेदों की रक्षा गुरू-शिष्य परम्परा द्वारा होती थी। इनका लिखित एवं निश्चित स्वरूप न होने से वेदों के स्वरूप में कुछ भेद आने लगा और इनकी शाखाओं का विकास हुआ। ऋग्वेद की पाँच शाखाएँ थीं-शैशिरीयशाकल, बाष्कल, आश्वलायन, शांखायन और माण्डूकेय। इनमें अब पहली शाखा ही उपलब्ध होती है। यह शाखा आदित्य सम्प्रदायिका है। शुक्ल यजुर्वेद की दो प्रधान शाखाएँ हैं-माध्यंदिन और काण्व। पहली उत्तरी भारत में मिलती है और दूसरी महाराष्ट्र में। इनमें अधिक भेद नहीं है। कृष्ण यजुर्वेद की आजकल चार शाखाएँ मिलती हैं-तैत्तिरीय मैत्रयणी, काठक (या कठ) तथा कापिष्ठल संहिता। इनमें दूसरी-तीसरी पहली से मिलती हैं, क्रम में थोड़ा ही अन्तर है। चौथी शाखा आधी ही मिली है। यह वेद ब्रह्मसम्प्रदायिका है। सामवेद की दो शाखाएँ थीं-कौथुम और राणायनीय। इसमें कौथुम का केवल सातवाँ प्रपाठक मिलता है। यह शाखा भी आदित्य सम्प्रदायिका है। अथर्ववेद की दो शाखाएँ उपलब्ध हैं-पैप्पलाद और शौनक। वर्तमान समय में शौनक शाखा ही पूर्णरुप में प्राप्त होती है, यह शाखा आदित्यसम्प्रदायिका है।

ब्राह्मण-ग्रन्थ

चारों वेदों के संस्कृत भाषा में प्राचीन समय में जो अनुवाद थे 'मन्त्रब्राह्मणयोः वेदनामधेयम्' के अनुसार वे ब्राह्मण ग्रंथ कहे जाते हैं। चार मुख्य

ब्राह्मण ग्रंथ हैं- ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ। वेद संहिताओं के बाद ब्राह्मण-ग्रन्थों का निर्माण हुआ माना जाता है। इनमें यज्ञों के कर्मकाण्ड का विस्तृत वर्णन है, साथ ही शब्दों की व्युत्पत्तियाँ तथा प्राचीन राजाओं और ऋषियों की कथाएँ तथा सृष्टि-सम्बन्धी विचार हैं। प्रत्येक वेद के अपने ब्राह्मण हैं। ऋग्वेद के दो ब्राह्मण हैं-(1) ऐतरेय ब्राह्मण और (2) कौषीतकी। ऐतरेय में 40 अध्याय और आठ पंचिकाएँ हैं, इसमें अग्निष्टोम, गवामयन, द्वादशाह आदि सोमयागों, अग्निहोत्र तथा राज्याभिषेक का विस्तृत ऐतरेय ब्राह्मण-जैसा ही है। इनसे तत्कालीन इतिहास पर काफी प्रकाश पड़ता है। ऐतरेय में शुन:शेप की प्रसिद्ध कथा है। कौषीतकी से प्रतीत होता है कि उत्तर भारत में भाषा के सम्यक् अध्ययन पर बहुत बल दिया जाता था। शुक्ल यजुर्वेद का ब्राह्मण शतपथ के नाम से प्रसिद्ध है, क्योंकि इसमें सौ अध्याय हैं। ऋग्वेद के बाद प्राचीन इतिहास की सबसे अधिक जानकारी इसी से मिलती है। इसमें यज्ञों के विस्तृत वर्णन के साथ अनेक प्राचीन आख्यानों, व्युत्पत्तियों तथा सामाजिक बातों का वर्णन है। इसके समय में कुरु-पांचाल आर्य संस्कृति का केन्द्र था, इसमें पुरूरवा और उर्वशी की प्रणय-गाथा, च्यवन ऋषि तथा महा प्रलय का आख्यान, जनमेजय, शकुन्तला और भरत का उल्लेख है। सामवेद के अनेक ब्राह्मणों में से पंचविंश या ताण्ड्य ही महत्त्वपूर्ण है। अथर्ववेद का ब्राह्मण गोपथ के नाम से प्रसिद्ध है।

आरण्यक

ब्राह्मणों के अन्त में कुछ ऐसे अध्याय मिलते हैं, जो गाँवों या नगरों में नहीं पढ़े जाते थे। इनका अध्ययन-अध्यापन गाँवों से दूर (अरण्योंध्वनों) में होता था, अत: इन्हें आरण्यक कहते हैं। गृहस्थाश्रम में यज्ञविधि का निर्देश करने के लिए ब्राह्मण-ग्रन्थ उपयोगी थे और उसके बाद वानप्रस्थ आश्रम में संन्यासी आर्य यज्ञ के रहस्यों और दार्शनिक तत्त्वों का विवेचन करने वाले आरण्यकों का अध्ययन करते थे। उपनिषदों का इन्हीं आरण्यकों से विकास हुआ।

उपनिषद्

उपनिषदों में मानव-जीवन और विश्व के गूढ़तम प्रश्नों को सुलझाने का प्रयत्न किया गया है। ये भारतीय अध्यात्म-शास्त्र के देदीप्यमान रत्न हैं। इनका मुख्य विषय ब्रह्म-विद्या का प्रतिपादन है। वैदिक साहित्य में इनका स्थान सबसे अन्त में होने से ये 'वेदान्त' भी कहलाते हैं। इनमें जीव और ब्रह्म की एकता के

प्रतिपादन द्वारा ऊँची-से-ऊँची दार्शनिक उड़ाने ली गई हैं। भारतीय ऋषियों ने गम्भीरतम चिन्तन से जिन आध्यात्मिक तत्त्वों का साक्षात्कार किया, उपनिषद उनका अमूल्य कोष हैं। इनमें अनेक शतकों की तत्त्व-चिन्ता का परिणाम है। मुक्तिकोपनिषद् चारों वेदों से सम्बद्ध 108 उपनिषद् गिनाये गए हैं, किन्तु 11 उपनिषद् ही अधिक प्रसिद्ध हैं-ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक और श्वेताश्वतर इनमें छान्दोग्य और बृहदारण्यक अधिक प्राचीन और महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। वैदिक साहित्य का यह सिद्धान्त देखा जाता है प्रत्येक मन्त्र भाग में एक और ब्राह्मण भाग में एक उपनिषद उपदिष्ट थे। अब प्रायः लुप्त हो गए। अब भी यह सिद्धान्त शुक्ल यजुर्वेद मे बचा है- ईशावास्यो निषद् मन्त्रोपनिषद् है और बृहदारण्यकोपनिषद् ब्राह्मणोपनिषद् है।

सूत्र-साहित्य

वैदिक साहित्य के विशाल एवं जटिल होने पर कर्मकाण्ड से सम्बद्ध सिद्धान्तों को एक नवीन रूप दिया गया। कम-से-कम शब्दों में अधिक-से-अधिक अर्थ-प्रतिपादन करने वाले छोटे-छोटे वाक्यों में सब महत्त्वपूर्ण विधि-विधान प्रकट किये जाने लगे। इन सारगर्भित वाक्यों को सूत्र कहा जाता था। कर्मकाण्ड-सम्बन्धी सूत्र-साहित्य को चार भागों में बाँटा गया-

(1) श्रौत सूत्र (2) गृह्य सूत्र (3) धर्म सूत्र और (4) शुल्ब सूत्र

पहले में वैदिक यज्ञ सम्बन्धी कर्मकाण्ड का वर्णन है। दूसरे में गृहस्थ के दैनिक यज्ञों का, तीसरे में सामाजिक नियमों का और चौथे में यज्ञ-वेदियों के निर्माण का।

श्रौत सूत्र

श्रौत का अर्थ है श्रुति (वेद) से सम्बद्ध यज्ञ योग। अतः श्रौत सूत्रों में तीन प्रकार की अग्नियों के आधान अग्निहोत्र, दर्श पौर्णमास, चातुर्मास्यादि साधारण यज्ञों तथा अग्निष्टोम आदि सोमयागों का वर्णन है। ये भारत की प्राचीन यज्ञ-पद्धति पर बहुत प्रकाश डालते हैं। ऋग्वेद के दो श्रौत सूत्र हैं-शांखायन और आश्वलायन। शुक्ल यजुर्वेद का एक-कात्यायन, कृष्ण यजुर्वेद के छः सूत्र हैं-आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी, बौधायन, भारद्वाज, मानव, वैखानस। सामवेद के लाट्यायन, द्राह्यायण और आर्षेय नामक तीन सूत्र हैं। अथर्ववेद का एक ही वैतान सूत्र है।

गृह्य सूत्र

इनमें उन विचारों तथा जन्म से मरणपर्यन्त किये जाने वाले संस्कारों का वर्णन है, जिनका अनुष्ठान प्रत्येक हिन्दू-गृहस्थ के लिए आवश्यक समझा जाता था। उपनयन और विवाह-संस्कार का विस्तार से वर्णन है। इन ग्रन्थों के अध्ययन से प्राचीन भारतीय समाज के घरेलू आचार-विचार का तथा विभिन्न प्रान्तों के रीति-रिवाज का परिचय पूर्ण रूप से हो जाता है। ऋग्वेद के गृह्य सूत्र शांखायन और आश्वलायन हैं। शुक्ल यजुर्वेद का पारस्कर, कृष्ण यजुर्वेद के आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी, बौधायन, ठींतंकअंर, वराह, मानव, काठक और वैखानस, सामवेद के गोभिल तथा खादिर और अथर्ववेद का कौशिक। इनमें गोभिल को प्राचीनतम माना जाता है।

धर्मसूत्र

धर्मसूत्रों में समाजिक जीवन के नियमों का विस्तार से प्रतिपादन है। वर्णाश्रम-धर्म की विवेचना करते हुए ब्रह्मचारी, गृहस्थ व राजा के कर्त्तव्यों, विवाह के भेदों, दाय की व्यवस्था, निषिद्ध भोजन, शुद्धि, प्रायश्चित्त आदि का विशेष वर्णन है। इन्हीं धर्मसूत्रों से आगे चलकर स्मृतियों की उत्पत्ति हुई, जिनकी व्यवस्थाएँ हिन्दू-समाज में आज तक माननीय समझी जाती हैं। वेद से सम्बद्ध केवल तीन धर्मसूत्र ही अब तक उपलब्ध हो सके हैं-आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी व बौधायन। ये कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा से सम्बद्ध हैं। शुक्लयजुर्वेद का शंखलिखित धर्मसूत्र होने की बात सुना है। अन्य धर्मसूत्रों में सामवेद से सम्बद्ध गौतमधर्मसूत्र और ऋग्वेद से सम्बद्ध वसिष्ठधर्म सूत्र उल्लेखनीय हैं।

शुल्ब सूत्र

इनका सम्बन्ध श्रौतसूत्रों से है। शुल्ब का अर्थ है मापने का डोरा। अपने नाम के अनुसार शुल्ब सूत्रों में यज्ञ-वेदियों को नापना, उनके लिए स्थान का चुनना तथा उनके निर्माण आदि विषयों का विस्तृत वर्णन है। ये भारतीय ज्यामिति के प्राचीनतम स्त्रोतग्रन्थ हैं।

वेदांग

काफी समय बीतने के बाद वैदिक साहित्य जटिल एवं कठिन प्रतीत होने लगा। उस समय वेद के अर्थ तथा विषयों का स्पष्टीकरण करने के लिए अनेक सूत्र-ग्रन्थ लिखे जाने लगे। इसलिए इन्हें वेदांग कहा गया।

वेदांग छः हैं-

शिक्षा, छन्द, व्याकरण, निरुक्त, कल्प और ज्योतिष

पहले चार वेदांग, मन्त्रों के शुद्ध उच्चारण और अर्थ समझने के लिए तथा अन्तिम दो वेदांग धार्मिक कर्मकाण्ड और यज्ञों का समय जानने के लिए आवश्यक हैं। व्याकरण को वेद का मुख कहा जाता है, ज्योतिष को नेत्र, निरुक्त को श्रोत्र, कल्प को हाथ, शिक्षा को नासिका तथा छन्द को दोनों पैर।

शिक्षा

उन ग्रन्थों को शिक्षा कहते हैं, जिनकी सहायता से वेद-मन्त्रों के उच्चारण का शुद्ध ज्ञान होता था। वेद-पाठ में स्वरों का विशेष महत्त्व था। इनकी शिक्षा के लिए पृथक् वेदांग बनाया गया। इसमें वर्णों के उच्चारण के अनेक नियम दिये गए हैं। संसार में उच्चारण-शास्त्र की वैज्ञानिक विवेचना करने वाले पहले ग्रन्थ यही हैं। ये वेदों की विभिन्न शाखाओं से सम्बन्ध रखते हैं और प्रातिशाख्य कहलाते हैं। ऋग्वेद अथर्ववेद, वाजसेनीय व तैत्तिरीय संहिता के प्रातिशाख्य मिलते हैं। बाद में इसके आधार पर शिक्षा-ग्रन्थ लिखे गए। इनमें शुक्ल यजुर्वेद की याज्ञवल्क्य-शिक्षा, सामवेद की नारद शिक्षा और पाणिनि की पाणिनीय शिक्षा मुख्य हैं।

छन्द

वैदिक मन्त्र छन्दोबद्ध हैं। छन्दों का बिना ठीक ज्ञान प्राप्त किये, वेद-मन्त्रों का शुद्ध उच्चारण नहीं हो सकता। अतः छन्दों की विस्तृत विवेचना आवश्यक समझी गई। शौनक मुनि के ऋक्प्रातिशाख्य में, शांखायन श्रौतसूत्र में तथा सामवेद से सम्बद्ध निदान सूत्र में इस शास्त्र का व्यवस्थित वर्णन है। किन्तु इस वेदांग का एकमात्र स्वतन्त्र ग्रन्थ पिंगलाचार्य-प्रणीत छन्द सूत्र है। इसमें वैदिक और लौकिक दोनों प्रकार के छन्दों का वर्णन है।

व्याकरण

इस अंग का उद्देश्य सन्धि, शब्द-रूप, धातु-रूप तथा इनकी निर्माण-पद्धति का ज्ञान कराना था। इस समय व्याकरण का सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ पाणिनी का अष्टाध्यायी है, किन्तु व्याकरण का विचार ब्राह्मण-ग्रन्थों के समय से शुरू हो गया था। पाणिनी से पहले गार्ग्य, स्फोटायन, भारद्वाज आदि व्याकरण के अनेक महान आचार्य हो चुके थे। इन सबके ग्रन्थ अब लुप्त हो चुके हैं।

निरुक्त

इसमें वैदिक शब्दों की व्युत्पत्ति दिखाई जाती थी। प्राचीन काल में वेद के कठिन शब्दों की क्रमबद्ध तालिका और कोश निघंटु कहलाते थे और इनकी व्याख्या निरुक्त में होती थी। आजकल केवल यास्काचार्य का निरुक्त ही उपलब्ध होता है। इसका समय 800 ई. पू. के लगभग है।

ज्योतिष

वैदिक युग में यह धारणा थी कि वेदों का उद्देश्य यज्ञों का प्रतिपादन है। यज्ञ उचित काल और मुहूर्त में किये जाने से ही फलदायक होते हैं। अत: काल-ज्ञान के लिए ज्योतिष का ज्ञान अत्यावश्यक माना गया। इस प्रकार ज्योतिष के ज्ञाता को यज्ञवेत्ता जाना गया। इस प्रकार ज्योतिष शास्त्र का विकास हुआ। यह वेद का अंग समझा जाने लगा। इसका प्राचीनतम ग्रन्थ लगधमुनि-रचित वेदांग ज्योतिष पंचसंवत्सरमयं इत्यादि 44 श्लोकात्मक है। नेपाल में इस ग्रन्थ के आधार पर बना वैदिक तिथिपत्रम् व्यवहार में लाया गया है।

कल्प

कल्प, वेद के छह अंगों (वेदांगों) में से वह अंग है, जो कर्मकाण्डों का विवरण देता है। अनेक वैदिक ऐतिहासिकों के मत से कल्पग्रंथ या कल्पसूत्र छ: वेदांगों में प्राचीनतम और वैदिक साहित्य के अधिक निकट हैं। वेदांगों में कल्प का विशिष्ट महत्व है क्योंकि जन्म, उपनयन, विवाह, अंत्येष्टि और यज्ञ जैसे विषय इसमें विहित हैं।

6

पाणिनि

पाणिनि (700 ई पू) संस्कृत भाषा के सबसे बड़े वैयाकरण हुए हैं। इनका जन्म तत्कालीन उत्तर पश्चिम भारत के गांधार में हुआ था। इनके व्याकरण का नाम अष्टाध्यायी है जिसमें आठ अध्याय और लगभग चार सहस्र सूत्र हैं। संस्कृत भाषा को व्याकरण सम्मत रूप देने में पाणिनि का योगदान अतुलनीय माना जाता है। अष्टाध्यायी मात्र व्याकरण ग्रंथ नहीं है। इसमें प्रकारांतर से तत्कालीन भारतीय समाज का पूरा चित्र मिलता है। उस समय के भूगोल, सामाजिक, आर्थिक, शिक्षा और राजनीतिक जीवन, दार्शनिक चिंतन, खान-पान, रहन-सहन आदि के प्रसंग स्थान-स्थान पर अंकित हैं।

जीवनी एवं कार्य

पाणिनि का जन्म शलातुर नामक ग्राम में हुआ था। जहाँ काबुल नदी सिंधु में मिली है उस संगम से कुछ मील दूर यह गाँव था। उसे अब लहुर कहते हैं। अपने जन्मस्थान के अनुसार पाणिनि शालातुरीय भी कहे गए हैं। और अष्टाध्यायी में स्वयं उन्होंने इस नाम का उल्लेख किया है। चीनी यात्री युवान्च्वां (7वीं शती) उत्तर-पश्चिम से आते समय शालातुर गाँव में गए थे। पाणिनि के गुरू का नाम उपवर्ष पिता का नाम पणिन और माता का नाम दाक्षी था। पाणिनि जब बड़े हुए तो उन्होंने व्याकरणशास्त्र का गहरा अध्ययन किया। पाणिनि से पहले शब्दविद्या के अनेक आचार्य हो चुके थे। उनके ग्रंथों को पढ़कर और उनके

परस्पर भेदों को देखकर पाणिनि के मन में वह विचार आया कि उन्हें व्याकरणशास्त्र को व्यवस्थित करना चाहिए। पहले तो पाणिनि से पूर्व वैदिक संहिताओं, शाखाओं, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् आदि का जो विस्तार हो चुका था उस वाङ्मय से उन्होंने अपने लिये शब्दसामग्री ली जिसका उन्होंने अष्टाध्यायी में उपयोग किया है। दूसरे निरुक्त और व्याकरण की जो सामग्री पहले से थी उसका उन्होंने संग्रह और सूक्ष्म अध्ययन किया।

इसका प्रमाण भी अष्टाध्यायी में है, जैसा शाकटायन, शाकल्य, भारद्वाज, गार्ग्य, सेनक, आपिशलि, गालब और स्फोटायन आदि आचार्यों के मतों के उल्लेख से ज्ञात होता है। शाकटायन निश्चित रूप से पाणिनि से पूर्व के वैयाकरण थे, जैसा निरुक्तकार यास्क ने लिखा है। शाकटायन का मत था कि सब संज्ञा शब्द धातुओं से बनते हैं। पाणिनि ने इस मत को स्वीकार किया किंतु इस विषय में कोई आग्रह नहीं रखा और यह भी कहा कि बहुत से शब्द ऐसे भी हैं, जो लोक की बोलचाल में आ गए हैं और उनसे धातु प्रत्यय की पकड़ नहीं की जा सकती। तीसरी सबसे महत्वपूर्ण बात पाणिनि ने यह की कि उन्होंने स्वयं लोक को अपनी आँखों से देखा और घूमकर लोगों के बहुमुखी जीवन का परिचय प्राप्त करके शब्दों को छाना। इस प्रकार से कितने ही सहस्र शब्दों को उन्होंने इकट्ठा किया। शब्दों का संकलन करके उन्होंने उनको वर्गीकृत किया और उनकी कई सूचियाँ बनाई। एक सूची 'धातु पाठ' की थी जिसे पाणिनि ने अष्टाध्यायी से अलग रखा है। उसमें 1943 धातुएँ हैं। धातुपाठ में दो प्रकार की धातुएँ हैं- 1. जो पाणिनि से पहले साहित्य में प्रयुक्त हो चुकी थीं और दूसरी वे जो लोगों की बोलचाल में उन्हें मिलीं। उनकी दूसरी सूची में वेदों के अनेक आचार्य थे। किस आचार्य के नाम से कौन सा चरण प्रसिद्ध हुआ और उसमें पढ़नेवाले छात्र किस नाम से प्रसिद्ध थे और उन छन्द या शाखाओं के क्या नाम थे, उन सब की निष्पत्ति भिन्न-भिन्न प्रत्यय लगाकर पाणिनि ने दी है, जैसे एक आचार्य तित्तिरि थे। उनका चरण तैत्तरीय कहा जाता था और उस विद्यालय के छात्र एवं वहाँ की शाखा या संहिता भी तैत्तिरीय कहलाती थी।

पाणिनि की तीसरी सूची 'गोत्रों' के संबंध में थी। मूल सात गोत्र वैदिक युग से ही चले आते थे। पाणिनि के काल तक आते-आते उनका बहुत विस्तार हो गया था। गोत्रों की कई सूचियाँ श्रौत सूत्रों में हैं। जैसे बोधायन श्रौत सूत्र में जिसे महाप्रवर कांड कहते हैं। किंतु पाणिनि ने वैदिक और लौकिक दोनों भाषाओं के परिवार या कुटुंब के नामों की एक बहुत बड़ी सूची बनाई जिसमें आर्ष गोत्र

और लौकिक गोत्र दोनों थे। छोटे-मोटे पारिवारिक नाम या अल्लों को उन्होंने गोत्रवयव कहा है। एक गोत्र या परिवार में होनेवाला दादा, बूढ़े एवं चाचा (सपिंड स्थविर पिता, पुत्र, पौत्र) आदि व्यक्तियों के नाम कैसे रखे जाते थे, इसका ब्यौरेवार उल्लेख पाणिनि ने किया है। बीसियों सूत्रों के साथ लगे हुए गणों में गोत्रों के अनेक नाम पाणिनि के 'गणपाठ' नामक परिशिष्ट ग्रंथ में हैं। पाणिनि की चौथी सूची भौगोलिक थी। पाणिनि का जन्मस्थान उत्तर पश्चिम में था, जिस प्रदेश को हम गांधार कहते हैं। यूनानी भूगोल लेखकों ने लिखा है कि उत्तर पश्चिम अर्थात् गांधार और पंजाब में लगभग 500 ऐसे ग्राम थे जिनमें से प्रत्येक की जनसंख्या दस सहस्र के लगभग थी। पाणिनि ने उन 500 ग्रामों के वास्तविक नाम भी दे दिए हैं जिनसे उनके भूगोल संबंधी गणों की सूचियाँ बनी हैं। ग्रामों और नगरों के उन नामों की पहचान टेढ़ा प्रश्न है, किंतु यदि बहुत परिश्रम किया जाय तो यह संभव है जैसे सुनेत और सिरसा पंजाब के दो छोटे गाँव हैं जिन्हें पाणिनि ने सुनेत्र और शैरीषक कहा है। पंजाब की अनेक जातियों के नाम उन गाँवों के अनुसार थे जहाँ वह जाति निवास करती थी या जहाँ से उसके पूर्वज आए थे। इस प्रकार निवास और अभिजन (पूर्वजों का स्थान) इन दोनों से जो उपनाम बनते थे वे पुरुष नाम में जुड़ जाते थे क्योंकि ऐसे नाम भी भाषा के अंग थे।

पाणिनि ने पंजाब के मध्यभाग में खड़े होकर अपनी दृष्टि पूर्व और पश्चिम की ओर दौड़ाई। उन्हें दो पहाड़ी इलाके दिखाई पड़े। पूर्व की ओर कुल्लू काँगड़ाँ जिसे उस समय त्रिगर्त कहते थे, पश्चिमी ओर का पहाड़ी प्रदेश वह था जो गांधार की पूर्वी राजधानी तक्षशिला से पश्चिमी राजधानी पुष्कलावती तक फैला था। इसी में वह प्रदेश था जिसे अब कबायली इलाका कहते हैं और जो सिंधु नद के उत्तर से दक्षिण तक व्याप्त था और जिसके उत्तरी छोर पर दरद (वर्तमान गिलगित) और दक्षिणी छोर पर सौबीर (वर्तमान सिंध) था। पाणिनि ने इस प्रदेश में रहनेवाले कबीलों की विस्तृत सूची बनाई और संविधानों का अध्ययन किया। इस प्रदेश को उस समय ग्रामणीय इलाका कहते थे क्योंकि इन कबीलों में, जैसा आज भी है और उस समय भी था, ग्रामणी शासन की प्रथा थी और ग्रामणी शब्द उनके नेता या शासक की पदवी थी। इन जातियों की शासनसभा को इस समय जिर्गा कहते हैं और पाणिनि के युग में उसे 'ब्रातपूग', 'संघ' या 'गण' कहते थे। वस्तुतः सब कबीलों के शासन का एक प्रकार न था किंतु वे संघ शासन के विकास की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में थे। पाणिनि ने व्रात और पूग इन संज्ञाओं

से बताया है कि इनमें से बहुत से कबीले उत्सेधजीवी या लूटपाट करके जीवन बिताते थे जो आज भी वहाँ के जीवन की सच्चाई है। उस समय ये सब कबीले या जातियाँ हिंदू थीं और उनके अधिपतियों के नाम संस्कृत भाषा के थे जैसे देवदत्तक, कबीले का पूर्वपुरुष या संस्थापक कोई देवदत्त था। अब नाम बदल गए हैं, किंतु बात वही है जैसे ईसाखेल कबीले का पूर्वज ईसा नामक कोई व्यक्ति था। इन कबीलों के बहुत से नाम पाणिनि के गणपाठ में मिलते हैं, जैसे अफरीदी और मोहमद जिन्हें पाणिनि ने आप्रीत और मधुमंत कहा है। पाणिनि की भौगोलिक सूचियों में एक सूची जनपदों की है। प्राचीन काल में अपना देश जनपद भूमियों में बैठा हुआ था। मध्य एशिया की वंक्षु नदी के उपरिभाग में स्थित कंबोज जनपद, पश्चिम में सौराष्ट्र का कच्छ जनपद, पूरब में असम प्रदेश का सूरमस जनपद (वर्तमान सूरमा घाटी) और दक्षिण में गोदावरी के किनारे अश्मक जनपद (वर्तमान पेठण) इन चार खूँटों के बीच में सारा भूभाग जनपदों में बँटा हुआ था और लोगों के राजनीतिक और सामाजिक जीवन एवं भाषाओं का जनपदीय विकास सहस्रों वर्षों से चला आता था।

पाणिनि ने सहस्रों शब्दों की व्युत्पत्ति बताई जो अष्टाध्यागी के चौथे पाँचवें अध्यायों में है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, सैनिक, व्यापारी किसान, रँगरेज, बढ़ई, रसोइए, मोची, ग्वाले, चरवाहे, गड़रिये, बुनकर, कुम्हार आदि सैकड़ों पेशेवर लोगों से मिलजुलकर पाणिनि ने उनके विशेष पेशे के शब्दों का संग्रह किया।

पाणिनि ने यह बताया कि किस शब्द में कौन सा प्रत्यय लगता है। वर्णमाला के स्वर और व्यंजन रूप जो अक्षर हैं उन्हीं से प्रत्यय बनाए गए। जैसे– वर्षा से वार्षिक, यहाँ मूल शब्द वर्षा है उससे इक् प्रत्यय जुड़ गया और वार्षिक अर्थात् वर्षा संबंधी यह शब्द बन गया।

अष्टाध्यायी में तद्धितों का प्रकरण रोचक है। कहीं तो पाणिनि की सूक्ष्म छानबीन पर आश्चर्य होता है, जैसे व्यास नदी के उत्तरी किनारे की बाँगर भूमि में जो पक्के बारामासी कुएँ बनाए जाते थे उनके नामों का उच्चारण किसी दूसरे स्वर में किया जाता था और उसी के दक्खिनी किनारे पर खादर भूमि में हर साल जो कच्चे कुएँ खोद लिए जाते थे उनके नामों का स्वर कुछ भिन्न था। यह बात पाणिनि ने 'उदक् च बिपाशा' सूत्र में कही है। गायों और बैलों की तो जीवनकथा ही पाणिनि ने सूत्रों में भर दी है।

आर्थिक जीवन का अध्ययन करते हुए पाणिनि ने उन सिक्कों को भी जाँचा जो बाजारों में चलते थे। जैसे 'शतमान', 'कार्षापण', 'सुवर्ण', 'अंध',

'पाद', 'माशक' 'त्रिंशत्क' (तीस मासे या साठ रत्ती तौल का सिक्का), 'विंशतिक' (बीस मासे की तोल का सिक्का)। कुछ लोग अबला बदली से भी माल बेचते थे। उसे 'निमान' कहा जाता था।

पाणिनि के काल में शिक्षा और वांग्मय का बहुत विस्तार था। संस्कृत भाषा का उन्होंने बहुत ही गहरा अध्ययन किया था। वैदिक और लौकिक दोनों भाषाओं से वे पूर्णतया परिचित थे। उन्हीं की सामग्री से पाणिनि ने अपने व्याकरण की रचना की पर उसमें प्रधानता लौकिक संस्कृत की ही रखी। बोलचाल की लौकिक संस्कृत को उन्होंने भाषा कहा है। उन्होंने न केवल ग्रंथरचना की किंतु अध्यापन कार्य भी किया। (व्याकरण के उदाहरणों में उनके विषय का नाम कोत्स कहा है)। पाणिनि का शिक्षा विषयक संबंध, संभव है, तक्षशिला के विश्वविद्यालय से रहा हो। कहा जाता है, जब वे अपनी सामग्री का संग्रह कर चुके तो उन्होंने कुछ समय तक एकांतवास किया और अष्टाध्यायी की रचना की।

पाणिनि का समय क्या था, इस विषय में कई मत हैं। कोई उन्हें 7वीं शती ई. पू., कोई 5वीं शती या चौथी शती ई. पू. का कहते हैं। पतंजलि ने लिखा है कि पाणिनि की अष्टाध्यायी का संबंध किसी एक वेद से नहीं बल्कि सभी वेदों की परिषदों से था (सर्व वेद परिषद)। पाणिनि के ग्रंथों की सर्वसम्मत प्रतिष्ठा का यह भी कारण हुआ।

पाणिनि को किसी मतविशेष में पक्षपात न था। शब्द का अर्थ एक व्यक्ति है या जाति, इस विषय में उन्होंने दोनों पक्षों को माना है। गऊ शब्द एक गाय का भी वाचक है और गऊ जाति का भी। वाजप्यायन और व्याडि नामक दो आचार्यों में भिन्न मतों का आग्रह या, पर पाणिनि ने सरलता से दोनों को स्वीकार कर लिया।

पाणिनि से पूर्व एक प्रसिद्ध व्याकरण इंद्र का था। उसमें शब्दों का प्रातिकंठिक या प्रातिपदिक विचार किया गया था। उसी की परंपरा पाणिनि से पूर्व भारद्वाज आचार्य के व्याकरण में ली गई थी। पाणिनि ने उसपर विचार किया। बहुत सी पारिभाषिक संज्ञाएँ उन्होंने उससे ले लीं, जैसे सर्वनाम, अव्यय आदि और बहुत सी नई बनाई, जैसे टि, घु, भ आदि।

पाणिनि को मांगलिक आचार्य कहा गया है। उनके हृदय की उदार वृत्ति मंगलात्मक कर्म और फल की इच्छुक थी। इसकी साक्षी यह है कि उन्होंने अपने शब्दानुशासन का आरंभ 'वृद्ध' शब्द से किया। कुछ विद्वान् कहते हैं कि पाणिनि

के ग्रंथ में न केवल आदिमंगल बल्कि मध्यमंगल और अंतमंगल भी है। उनका अंतिम सूत्र अ आ है। ह्रस्वकार वर्णसमन्वय का मूल है। पाणिनि को सुहृद्भूत आचार्य अर्थात् सबके मित्र एवं प्रमाणभूत आचार्य भी कहा है।

पंतजलि का कहना है कि पाणिनि ने जो सूत्र एक बार लिखा उसे काटा नहीं। व्याकरण में उनके प्रत्येक अक्षर का प्रमाण माना जाता है। शिष्य, गुरू, लोक और वेद धातुलि शब्द और देशी शब्द जिस ओर आचार्य ने दृष्टि डाली उसे ही रस से सींच दिया। आज भी पाणिनि 'शब्दः लोके प्रकाशते', अर्थात् उनका नाम सर्वत्र प्रकाशित है।

समयकाल

इनका समयकाल अनिश्चित तथा विवादित है। इतना तय है कि छठी सदी ईसा पूर्व के बाद और चौथी सदी ईसापूर्व से पहले की अवधि में इनका अस्तित्त्व रहा होगा। ऐसा माना जाता है कि इनका जन्म पंजाब (पाकिस्तान) के शालातुला में हुआ था जो आधुनिक पेशावर (पाकिस्तान) के करीब है। इनका जीवनकाल 520–460 ईसा पूर्व माना जाता है।

पाणिनि के जीवनकाल को मापने के लिए यवनानी शब्द के उद्धरण का सहारा लिया जाता है। इसका अर्थ यूनान की स्त्री या यूनान की लिपि से लगाया जाता है। गांधार में यवनो (ळतममो) के बारे में प्रत्यक्ष जानकारी सिकंदर के आक्रमण के पहले नहीं थी। सिकंदर भारत में ईसा पूर्व 330 के आसपास आया था। पर ऐसा हो सकता है कि पाणिनि को फारसी यौन के जरिये यवनों की जानकारी होगी और पाणिनि दारा प्रथम (शासनकाल–521–485 ईसा पूर्व) के काल में भी हो सकते हैं। प्लूटार्क के अनुसार सिकंदर जब भारत आया था तो यहां पहले से कुछ यूनानी बस्तियां थीं।

लेखन

ऐसा माना जाता है कि पाणिनि ने लिखने के लिए किसी न किसी माध्यम का प्रयोग किया होगा क्योंकि उनके द्वारा प्रयुक्त शब्द अति क्लिष्ट थे तथा बिना लिखे उनका विश्लेषण संभव नहीं लगता है। कई लोग कहते है कि उन्होंने अपने शिष्यों की स्मरण शक्ति का प्रयोग अपनी लेखन पुस्तिका के रूप में किया था। भारत में लिपि का पुनः प्रयोग (सिन्धु घाटी सभ्यता के बाद) 6ठी सदी ईसा पूर्व में हुआ और ब्राह्मी लिपि का प्रथम प्रयोग दक्षिण भारत के तमिलनाडु में

हुआ जो उत्तर पश्चिम भारत के गांधार से दूर था। गांधार में 6ठी सदी ईसा पूर्व में फारसी शासन था और ऐसा संभव है कि उन्होंने आर्माइक वर्णों का प्रयोग किया होगा।

कृतियां

पाणिनि का संस्कृत व्याकरण चार भागों में है –
माहेश्वर सूत्र–स्वर शास्त्र
अष्टाध्यायी या सूत्रपाठ –शब्द विश्लेषण
धातुपाठ–धातुमूल (क्रिया के मूल रूप)

गणपाठ

पतंजलि ने पाणिनि के अष्टाध्यायी पर अपनी टिप्पणी लिखी जिसे महाभाष्य का नाम दिया (महा़भाष्य (समीक्षा, टिप्पणी, विवेचना, आलोचना))।

पाणिनि का महत्त्व

एक शताब्दी से भी पहले प्रसिद्ध जर्मन भारतविद् मैक्स मूलर (1823–1900) ने अपने साइंस ऑफ थाट में कहा –

'मैं निर्भीकतापूर्वक कह सकता हूँ कि अंग्रेजी या लैटिन या ग्रीक में ऐसी संकल्पनाएँ नगण्य हैं जिन्हें संस्कृत धातुओं से व्युत्पन्न शब्दों से अभिव्यक्त न किया जा सके। इसके विपरीत मेरा विश्वास है कि 2,50,000 शब्द सम्मिलित माने जाने वाले अंग्रेजी शब्दकोश की सम्पूर्ण सम्पदा के स्पष्टीकरण हेतु वांछित धातुओं की संख्या, उचित सीमाओं में न्यूनीकृत पाणिनीय धातुओं से भी कम है। .... अंग्रेजी में ऐसा कोई वाक्य नहीं जिसके प्रत्येक शब्द का 800 धातुओं से एवं प्रत्येक विचार का पाणिनि द्वारा प्रदत्त सामग्री के सावधानीपूर्वक वेश्लेषण के बाद अविशष्ट 121 मौलिक संकल्पनाओं से सम्बन्ध निकाला न जा सके।'

पाणिनि की सूत्र शैली

पाणिनि के सूत्रों की शैली अत्यंत संक्षिप्त है। वे सूत्रयुग में ही हुए थे। श्रौत सूत्र, धर्म सूत्र, गृहस्थसूत्र, प्रातिशाख्य सूत्र भी इसी शैली में है, किंतु पाणिनि के सूत्रों में जो निखार है वह अन्यत्र नहीं है। इसीलिये पाणिनि के सूत्रों को प्रतिष्णात सूत्र कहा गया है। पाणिनि ने वर्ण या वर्णमाला को 14 प्रत्याहार

सूत्रों में बाँटा और उन्हें विशेष क्रम देकर 42 प्रत्याहार सूत्र बनाए। पाणिनि की सबसे बड़ी विशेषता यही है जिससे वे थोड़े स्थान में अधिक सामग्री भर सके। यदि अष्टाध्यायी के अक्षरों को गिना जाय तो उसके 3995 सूत्र एक सहस्र श्लोक के बराबर होते हैं। पाणिनि ने संक्षिप्त ग्रंथरचना की और भी कई युक्तियाँ निकालीं जैसे अधिकार और अनुवृत्ति अर्थात् सूत्र के एक या कई शब्दों को आगे के सूत्रों में ले जाना जिससे उन्हें दोहराना न पड़े। अर्थ करने की कुछ परिभाषाएँ भी उन्होंने बनाई। एक बड़ी विचित्र युक्ति उन्होंने असिद्ध सूत्रों की निकाली। अर्थात् बाद का सूत्र अपने से पहले के सूत्र के कार्य को ओझल कर दे। पाणिनि का यह असिद्ध नियम उनकी ऐसी तंत्र युक्ति थी जो संसार के अन्य किसी ग्रंथ में नहीं पाई जाती।

वार्त्तिकसूची

1. ऋवर्णयोः मिथः सावर्ण्यं वाच्यम्।
2. अकच्स्वरौ तु कर्तव्यौ प्रत्यंगम् मुक्तसंशयौ।
3. अपुरि इति वक्तव्यम्।
4. विभाषाप्रकरणे तीयस्य ङित्सूपसंख्यानम्।
5. अन्त्यात् पूर्वो मस्जेरनुषंगसंयोगाऽदिलोपार्थम्।
6. लपर इति वक्तव्यम्।
7. स्वरदीर्घयलोपेषु लोपाजादेशः न स्थानिवत्।
8. क्विलुगुपधात्वचंपरनिर्ह्रासकुत्वेषु उपसंख्यानम्।
9. पूर्वत्रसिद्धे न स्थानिवत्।
10. तस्य दोषः संयोगादिलोपलत्वणत्वेषु।
11. वर्णाश्रये नास्ति प्रत्ययलक्षणम्।
12. उत्तरपदत्वे चापदादिविधौ।
13. नानर्थकेऽलोन्त्यविधिरनभ्यासविकारे।
14. अर्थवद्ग्रहणे नानर्थकस्य ग्रहणम्।
15. यस्मिन्विधिः तदादौ अल्ग्रहणे।
16. समासप्रत्ययविधौ प्रतिषेधः।
17. उगिद्वर्णग्रहणवर्जम्।
18. सुसर्वार्धदिक्शब्देभ्यो जनपदस्य।
19. तोर्वृद्धिमद्विधाववयवानाम्।

20. पदांगाधिकारे तस्य च तदुत्तरस्य।
21. तन्मध्यपतितस्तद्ग्रहणेन गृह्यते।
22. अनिनस्मिन्ग्रहणान्यर्थवता चानर्थकेन च तदन्तविधिं प्रयोजयन्ति।
23. प्रत्ययग्रहणे चापंचम्याः।

पाणिनि और आधुनिक भाषाशास्त्र

पाणिनि का कार्य 19वीं सदी में यूरोप में जाना जाने लगा, जिससे इसका आधुनिक भाषाशास्त्र पर खूब प्रभाव पड़ा। आरंभ में फ्रेन्ज बोप् ने पाणिनि का अध्ययन किया। बाद में बहुत सी रचनाओं से योरपीय संस्कृत के विद्वान् जैसे फर्नांडीस डी सॉसर, लियोनार्ड ब्लूमफील्ड और रोमन जैकब्सन् आदि प्रभावित हुए। फ्रिट्स् स्टाल ने योरप में भाषा पर भारतीय विचारों के प्रभाव की विवेचना की।

डी सॉस

पाणिनि और बाद के भारतीय भाषाशास्त्री भर्तृहरि का फर्डीनांड डि सॉसर के कई बुनियादी विचारों पर काफी प्रभाव पड़ा। फर्डीनांड डि सॉसर संस्कृत के प्राध्यापक थे, जो कि आधुनिक संरचनात्मक भाषाशास्त्र के जनक कहे जाते हैं। सॉसर ने स्वयं अपने कुछ विचारों पर भारतीय व्याकरण के प्रभाव का जिक्र किया है। अपने 1881 में प्रकाशित 'डी लेम्पलोइ डु जेनिटिफ् ब्सॉल्युु एन् सैन्स्क्रिट्' (संस्कृत में जेनेटिव् निरपेक्ष का प्रयोग) में, उन्होंने पाणिनि का विशेष रूप से जिक्र करके अपनी रचना को प्रभावित करने वाला बताया है।

लियोनार्ड् ब्लूम्फील्ड्

अमेरिकी संरचनावाद के संस्थापक लियोनॉर्ड् ब्लूम्फील्ड ने 1927 में एक शोधपत्र लिखा जिसका शीर्षक था 'ऑन् सम् रूल्स् ऑफ् पाणिनि' (यानी, पाणिनि के कुछ नियमों पर)।

आज के औपचारिक तन्त्रों के साथ तुलना

पाणिनि का व्याकरण संसार का पहला औपचारिक तन्त्र (फॉर्मल् सिस्टम्) है। इसका विकास 19वीं सदी के गोट्लॉब फ्रेज के अन्वेषणों और उसके बाद के गणित के विकासों से बहुत पहले ही हो गया था। अपने व्याकरण

का स्वरूप बनाने में पाणिनि ने 'सहायक प्रतीकों' का प्रयोग किया, जिसमें नये शब्दांशों को सिन्टैक्टिक श्रेणियों का विभाजन रखने के लिए प्रयोग किया, ताकि व्याकरण की व्युत्पत्तियों को यथेष्ट नियन्त्रित किया जा सके। ठीक यही तकनीक जब एमिल पोस्ट् ने दोबारा 'खोजी', तो यह कम्प्यूटर प्रोग्रामिंग भाषाओं की अभिकल्पना के लिए मानदण्ड बना। आज संस्कृतविद् स्वीकार करते हैं कि पाणिनि का भाषीय औजार अनुप्रयुक्त पोस्ट-सिस्टम् के रूप में भली-भाँति वर्णित है। पर्याप्त मात्रा में प्रमाण मौजूद हैं कि इन प्राचीन लोगों को सहपाठ-संवेदी-व्याकरण (कन्टेक्स्ट-सेन्सिटिव ग्रामर) में महारत थी और कई जटिल समस्याओं को सुलझाने में व्यापक क्षमता थी।

अन्य रचनाएँ

पाणिनि को दो साहित्यिक रचनाओं के लिए भी जाना जाता है, यद्यपि वे अब प्राप्य नहीं हैं।

जाम्बवती विजय आज एक अप्राप्य रचना है जिसका उल्लेख राजशेखर नामक व्यक्ति ने जहलण की सूक्ति मुक्तावली में किया है। इसका एक भाग रामयुक्त की नामलिंगानुशासन की टीका में भी मिलता है।

राजशेखर ने जहलण की सूक्तिमुक्तावली में लिखा है–

नमः पाणिनये तस्मै यस्मादाविर भूदिह।
आदौ व्याकरणं काव्यमनु जाम्बवतीजयम्।

पातालविजय, जो आज अप्राप्य रचना है, जिसका उल्लेख नामिसाधु ने रुद्रटकृत काव्यालंकार की टीका में किया है।

7

संस्कृत व्याकरण

संस्कृत में व्याकरण की परम्परा बहुत प्राचीन है। संस्कृत भाषा को शुद्ध रूप में जानने के लिए व्याकरण शास्त्र का अध्ययन किया जाता है। अपनी इस विशेषता के कारण ही यह वेद का सर्वप्रमुख अंग माना जाता है ('वेदांग')

यस्य षष्ठी चतुर्थी च विहस्य च विहाय च।
यस्याहं च द्वितीया स्याद् द्वितीया स्यामहं कथम् ॥

-जिसके लिए 'विहस्य' छठी विभक्ति का है और 'विहाय' चौथी विभक्ति का है य 'अहम् और कथम्' (शब्द) द्वितीया विभक्ति हो सकता है। मैं ऐसे व्यक्ति की पत्नी (द्वितीया) कैसे हो सकती हूँ?

(ध्यान दें कि किसी पद के अन्त में 'स्य' लगने मात्र से वह षष्टी विभक्ति का नहीं हो जाता, और न ही 'आय' लगने से चतुर्थी विभक्ति का। विहस्य और विहाय ये दोनों अव्यय हैं, इनके रूप नहीं चलते। इसी तरह 'अहम्' और 'कथम्' में अन्त में 'म्' होने से वे द्वितीया विभक्ति के नहीं हो गये। अहम् यद्यपि म्-में अन्त होता है फिर भी वह प्रथमपुरुष-एकवचन का रूप है। इस सामान्य बात को भी जो नहीं समझता है, उसकी पत्नी कैसे बन सकती हूँ? अल्प ज्ञानी लोग ऐसी गलती प्रायः कर देते हैं। यह भी ध्यान दें कि उन दिनों में लडकियां इतनी पढी-लिखी थीं वे मूर्ख से विवाह करना नहीं चाहती थीं और वे अपने विचार रखने के लिए स्वतन्त्र थीं।)

वचन

1. संस्कृत में तीन वचन होते हैं- एकवचन, द्विवचन तथा बहुवचन।
2. संख्या में एक होने पर एकवचन का, दो होने पर द्विवचन का तथा दो से अधिक होने पर बहुवचन का प्रयोग किया जाता है।

जैसे-

एक वचन

एकः बालकः क्रीडति

द्विवचन

द्वौ बालकौ क्रीडतः।

बहुवचन

त्रयः बालकाः क्रीडन्ति।

लिंग

पुल्लिंग- जिस शब्द में पुरुष जाति का बोध होता है, उसे पुलिंग कहते हैं।(जैसे रामः, बालकः, सः आदि)

सः बालकः अस्ति।

तौ बालकौ स्तः

ते बालकाः सन्ति।

स्त्रीलिंग- जिस शब्द से स्त्री जाति का बोध होता है, उसे स्त्रीलिंग कहते हैं। (जैसे रमा, बालिका, सा आदि)

सा बालिका अस्ति।

ते बालिके स्तः।

ताः बालिकाः सन्ति।

नपुंसकलिंग (जैसे- फलम्, गृहम, पुस्तकम, तत् आदि)

पुरुष

प्रथम पुरुष (First person)-सः, तौ, ते

मध्यम पुरुष (Second person)-त्वम्, युवाम्, यूयम्

उत्तम पुरुष (Third person)-अहं, आवाम्, वयम्

कारक

कारक नाम-वाक्य के अन्दर उपस्थित पहचान-चिह्न

कर्ता-ने (रामः गच्छति।)

कर्म-को (to) (बालकः विद्यालयं गच्छति।)

करण-से (by), द्वारा (सः हस्तेन खादति।)

सम्प्रदान -को के लिये (वित) (निर्धनाय धनं देयं।)

अपादान-से (तिवउ) अलगाव (वृक्षात् पत्रणि पतन्ति।)

सम्बन्ध-का, की, के (वि), रा, री, रे, ना, नी, ने, (रामः दशरथस्य पुत्रः आसीत्।)

अधिकरण-में, पे, पर (पदध्वद) (यस्य गृहे माता नास्ति,)

सम्बोधन-हे, भो, अरे, (हे राजन् ! अहं निर्दोषः।)

वाच्य

संस्कृत में तीन वाच्य होते हैं- कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य और भाववाच्य।

कर्तृवाच्य में कर्तापद प्रथमा विभक्ति का होता है। छात्रः श्लोकं पठति- यहाँ छात्रः कर्ता है और प्रथमा विभक्ति में है।

कर्मवाच्य में कर्तापद तृतीया विभक्ति का होता है। जैसे, छात्रेण श्लोकः पठ्यते। यहाँ छात्रेण तृतीया विभक्ति में है।

अकर्मक धातु में कर्म नहीं होने के कारण क्रिया की प्रधानता होने से भाववाच्य के प्रयोग सिद्ध होते हैं। कर्ता की प्रधानता होने से कर्तृवाच्य प्रयोग सिद्ध होते हैं। भाववाच्य एवं कर्मवाच्य में क्रियारूप एक जैसे ही रहते हैं।

क्र	कर्तृवाच्य	भाववाच्य
1.	भवान् तिष्ठतु	भवता स्थीयताम्
2.	भवती नृत्यतु	भवत्या नृत्यताम्
3.	त्वं वर्धस्व	त्वया वर्ध्यताम्
4.	भवन्तः न सिद्यन्ताम्	भवद्भिः न खिद्यताम्
5.	भवत्यः उत्तिष्ठन्तु	भवतीभिः उत्थीयताम्
6.	यूयं संचरत	युष्माभिः संचर्यताम्
7.	भवन्तौ रुदिताम्	भवद्भयां रुद्यताम्

8.	भवत्यौ हसताम्	भवतीभ्यां हस्यताम्
9.	विमानम् उड्डयताम्	विमानेन उड्डीयताम्
10	सर्वे उपविशन्तु	सर्वैः उपविश्यताम्

लकार

संस्कृत में लट्, लिट्, लुट्, लृट्, लेट्, लोट्, लङ्, लिङ्, लुङ्, लृङ्–ये दस लकार होते हैं। वास्तव में ये दस प्रत्यय हैं, जो धातुओं में जोड़े जाते हैं। इन दसों प्रत्ययों के प्रारम्भ में 'ल' है इसलिए इन्हें 'लकार' कहते हैं (ठीक वैसे ही जैसे कार, अकार, इकार, उकार इत्यादि)। इन दस लकारों में से आरम्भ के छः लकारों के अन्त में 'ट्' है- लट् लिट् लुट् आदि इसलिए ये टित् लकार कहे जाते हैं और अन्त के चार लकार ङित् कहे जाते हैं क्योंकि उनके अन्त में 'ङ्' है। व्याकरणशास्त्र में जब धातुओं से पिबति, खादति आदि रूप सिद्ध किये जाते हैं तब इन टित् और ङित् शब्दों का बहुत बार प्रयोग किया जाता है।

इन लकारों का प्रयोग विभिन्न कालों की क्रिया बताने के लिए किया जाता है। जैसे–जब वर्तमान काल की क्रिया बतानी हो तो धातु से लट् लकार जोड़ देंगे, परोक्ष भूतकाल की क्रिया बतानी हो तो लिट् लकार जोड़ेंगे।

(1) लट् लकार (= वर्तमान काल) जैसे – श्यामः खेलति। (श्याम खेलता है।)

(2) लिट् लकार (= अनद्यतन परोक्ष भूतकाल) जो अपने साथ न घटित होकर किसी इतिहास का विषय हो। जैसे – रामः रावणं ममार। (राम ने रावण को मारा।)

(3) लुट् लकार (= अनद्यतन भविष्यत् काल) जो आज का दिन छोड़ कर आगे होने वाला हो। जैसे – सः परश्वः विद्यालयं गन्ता। (वह परसों विद्यालय जायेगा।)

(4) लृट् लकार (= सामान्य भविष्य काल) जो आने वाले किसी भी समय में होने वाला हो। जैसे –- रामः इदं कार्यं करिष्यति। (राम यह कार्य करेगा।)

(5) लेट् लकार (= यह लकार केवल वेद में प्रयोग होता है, ईश्वर के लिए, क्योंकि वह किसी काल में बंधा नहीं है।)

(6) लोट् लकार (= ये लकार आज्ञा, अनुमति लेना, प्रशंसा करना, प्रार्थना आदि में प्रयोग होता है।) जैसे – भवान् गच्छतु। (आप जाइए) य सः

क्रीडतु। (वह खेले) य त्वं खाद। (तुम खाओ) य किमहं वदानि। (क्या मैं बोलूँ?)

(7) लङ् लकार (= अनद्यतन भूत काल) आज का दिन छोड़ कर किसी अन्य दिन जो हुआ हो। जैसे – भवान् तस्मिन् दिने भोजनमपचत्। (आपने उस दिन भोजन पकाया था।)

(8) लिङ् लकार = इसमें दो प्रकार के लकार होते हैं –
   (क) आशीर्लिङ् (= किसी को आशीर्वाद देना हो) जैसे – भवान् जीव्यात् (आप जीओ) य त्वं सुखी भूयात्। (तुम सुखी रहो।)
   (ख) विधिलिङ् (= किसी को विधि बतानी हो।) जैसे – भवान् पठेत्। (आपको पढ़ना चाहिए।) य अहं गच्छेयम्। (मुझे जाना चाहिए।)

(9) लुङ् लकार (= सामान्य भूत काल) जो कभी भी बीत चुका हो। जैसे – अहं भोजनम् अभक्षत्। (मैंने खाना खाया।)

(10) लृङ् लकार (= ऐसा भूत काल जिसका प्रभाव वर्तमान तक हो) जब किसी क्रिया की असिद्धि हो गई हो। जैसे – यदि त्वम् अपठिष्यत् तर्हि विद्वान् भवितुम् अर्हिष्यत्। (यदि तू पढ़ता तो विद्वान् बनता।)

इस बात को स्मरण रखने के लिए कि धातु से कब किस लकार को जोड़ेंगे, निम्नलिखित श्लोक स्मरण कर लीजिए–

लट् वर्तमाने लेट् वेदे भूते लुङ् लङ् लिटस्तथा।
विध्याशिषोर्लिङ् लोटौ च लुट् लृट् लृङ् च भविष्यति।

(अर्थात् लट् लकार वर्तमान काल में, लेट् लकार केवल वेद में, भूतकाल में लुङ् लङ् और लिट्, विधि और आशीर्वाद में लिङ् और लोट् लकार तथा भविष्यत् काल में लुट् लृट् और लृङ् लकारों का प्रयोग किया जाता है।)

लकारों के नाम याद रखने की विधि–

ल् में प्रत्याहार के क्रम से (अ इ उ ऋ ए ओ) जोड़ दें और क्रमानुसार (ट्) जोड़ते जाऐं। फिर बाद में (ङ्) जोड़ते जाऐं जब तक कि दश लकार पूरे न हो जाएँ। जैसे लट् लिट् लुट् लृट् लेट् लोट् लङ् लिङ् लुङ् लृङ्– इनमें लेट् लकार केवल वेद में प्रयुक्त होता है। लोक के लिए नौ लकार शेष रहे–

1. कर्मधारय
2. बहुव्रीहि
3. अव्ययीभाव
4. द्विगु

समास क्रिया पदों में नहीं होता। समास के पहले पद को 'पूर्व पद' कहते हैं, बाकी सभी को 'उत्तर पद' कहते हैं।

समास के तोड़ने को विग्रह कहते हैं, जैसे -- 'रामश्यामौ' यह समास है और रामः च श्यामः च (राम और श्याम) इसका विग्रह है।

पाठकों को याद करने के लिये समास की ट्रिक-'अब तक दादा' अ= अव्ययीभाव, ब= बहुव्रीहि, त= तत्पुरुष क= कर्मधारयः, द= द्वंद्व, और द= द्विगु।

संस्कृत व्याकरण शब्दावली

संस्कृत शब्द	तुल्य अंग्रेजी	पाणिनि द्वारा प्रयुक्त शब्द
विशेषण	adjective -	
adverb		
agreement		
महाप्राण	aspirated	–
आत्मनेपद	atmanepada	–
विभक्ति	case	–
प्रथमा	case 1 (subject)	–
द्वितीया	case 2 (object)	–
तृतीया	case 3 ('with')	–
चतुर्थी	case 4 ('for')	–
पंचमी	case 5 ('from')	–
षष्ठी	case 6 ('of')	–
सप्तमी	case 7 ('in')	–
संबोधन	case 8 (address)	&
causal verb	णिजन्त	
आज्ञा	command mood	लोट्
समास	compound (word)	–
संध्यक्षर	compound vowel	,P
संकेत	conditional mood	लृङ्
व्यंजन	consonant	gY
desiderative	सन्नन्त	

अनद्यतन	distant future tense	लुट्
परोक्षभूत	distant past tense	लिट्
अभ्यास	doubling	–
द्विवचन	dual (number)	–
द्वन्द्व	dvandva	–
स्त्रीलिंग	feminine gender	–
उत्तम	first person	–
लिंग	gender	–
gerund	क्त्वान्त	
grammatical case		
व्याकरण	grammar	
तालु	hard palate	–
गुरू	heavy (syllable)	&
intensive	यणन्त	
लघु	light (syllable)	–
ओष्ठ	lip	–
दीर्घ	long vowel	–
पुंलिल्ग	masculine gender	–
गुण	medium vowel	–
अनुनासिक	nasal	–
नपुंसकलिंग	neuter gender	
noun ending	lqI	
नामधातु	noun from verb	
noun	सुबन्त	
वचन	number	
कर्मन्	object	–
विधि	option mood	लङ्
भविष्यन्	ordinary future tense	
अनद्यतनभूत	ordinary past tense	लङ्
परस्मैपद	parasmaipada	–

participle		
पुरुष	person	पुरुष
बहुवचन	plural (number)	
स्थान	point of pronunciation	
prefix		
वर्तमान	present tense	लट्
–R	primary (suffix)	
सर्वनामन्	pronoun	–
भूत	recent past tense	लुङ्
ऊष्मन्	"s"-sound	–
–	sandhi	–
मध्यम	second person	मध्यम
तद्धित	secondary (suffix)	–
अन्तःस्थ	semivowel	
ह्रस्व	short vowel	–
समानाक्षर	simple vowel	–
एकवचन	singular (number)	–
कण्ठ	soft palate	
प्रातिपदिक	stem (of a noun)	–
अङ्ग	stem (of any word)	–
स्पर्श	stop	
वृद्धि	strong vowel	
कर्तृ	subject	
प्रत्यय	suffix	–
अक्षर	syllable	
प्रथम	third person	–
दन्त	tooth	
उभयपद	ubhayapada	
अल्पप्राण	unaspirated	
अव्यय	uninflected word	अव्यय
अघोष	unvoiced	

गण	verb class	–
verb ending	तिङ्	
उपसर्ग	verb prefix	उपसर्ग
धातु	verb root	-
verb	तिंन्त	
verbless sentence		
घोषवत्	voiced	–
स्वर	vowel	vP

8

बौद्ध धर्म

बौद्ध धर्म अखण्ड भारत के हिन्दू धर्म की श्रमण परम्परा से निकला हुआ एक सम्प्रदाय है। ईसा पूर्व 6ठी शताब्दी में गौतम बुद्ध द्वारा बौद्ध सम्प्रदाय की स्थापना की गई थी, जो आगे चलकर एक धर्म में बदल गई, तत्पश्चात त्रिपिटक नामक धर्मग्रंथ लिखा गया हैं। बौद्ध धर्म में प्रमुख खण्ड सम्प्रदाय हैं– महायान, थेरवाद, वज्रयान, और नवयान, परन्तु बौद्ध सम्प्रदाय एक ही है एवं सभी गौतम बुद्ध के सिद्धान्त ही मानते हैं। बुद्ध के महापरिनिर्वाण के अगले पांच शताब्दियों में, बौद्ध सम्प्रदाय धर्म के रूप में पूरे भारतीय उपमहाद्वीप में फैला और अगले दो हजार वर्षों में मध्य, पूर्वी और दक्षिण-पूर्वी जम्बू महाद्वीप में भी फैल गया। बौद्ध धर्म आज विश्व का चौथा सबसे बड़ा धर्म बन गया हैं।

गौतम बुद्ध

बुद्ध की पत्थर की मूर्ति

बुद्ध का वास्तविक नाम सिद्धार्थ था। उनका जन्म 563 ई.पू. में कपिलवस्तु (शाक्य महाजनपद की राजधानी) के पास लुंबिनी (वर्तमान में दक्षिण मध्य नेपाल) में हुआ था। इसी स्थान पर सम्राट अशोक ने बुद्ध की स्मृति में एक स्तम्भ बनाया था।

सिद्धार्थ के पिता शाक्यों के राजा शुद्धोदन थे। परंपरागत कथा के अनुसार, सिद्धार्थ की माता महामाया उनके जन्म के कुछ देर बाद मर गयी थी। कहा जाता है कि उनका नाम रखने के लिये 8 ऋषियो को आमन्त्रित किया गया था, सभी ने 2 सम्भावनायें बताई थी, (1) वे एक महान राजा बनेंगे (2) वे एक साधु या परिव्राजक बनेंगे। इस भविष्य वाणी को सुनकर राजा शुद्धोदन ने अपनी योग्यता की हद तक सिद्धार्थ को साधु न बनने देने की बहुत कोशिशें कीं। शाक्यों का अपना एक संघ था। बीस वर्ष की आयु होने पर हर शाक्य तरुण को शाक्यसंघ में दीक्षित होकर संघ का सदस्य बनना होता था। सिद्धार्थ गौतम जब बीस वर्ष के हुये तो उन्होंने भी शाक्यसंघ की सदस्यता ग्रहण की और शाक्यसंघ के नियमानुसार सिद्धार्थ को शाक्यसंघ का सदस्य बने हुये आठ वर्ष व्यतीत हो चुके थे। वे संघ के अत्यन्त समर्पित और पक्के सदस्य थे। संघ के मामलों में वे बहुत रूचि रखते थे। संघ के सदस्य के रूप में उनका आचरण एक उदाहरण था और उन्होंने स्वयं को सबका प्रिय बना लिया था।

संघ की सदस्यता के आठवें वर्ष में एक ऐसी घटना घटी जो शुद्धोदन के परिवार के लिये दुखद बन गयी और सिद्धार्थ के जीवन में संकटपूर्ण स्थिति पैदा हो गयी। शाक्यों के राज्य की सीमा से सटा हुआ कोलियों का राज्य था। रोहणी नदी दोनों राज्यों की विभाजक रेखा थी। शाक्य और कोलिय दोनों ही रोहिणी नदी के पानी से अपने-अपने खेत सींचते थे। हर फसल पर उनका आपस में विवाद होता था कि कौन रोहिणी के जल का पहले और कितना उपयोग करेगा। ये विवाद कभी-कभी झगड़े और लड़ाइयों में बदल जाते थे। जब सिद्धार्थ 28 वर्ष के थे, रोहणी के पानी को लेकर शाक्य और कोलियों के नौकरों में झगड़ा हुआ जिसमें दोनों ओर के लोग घायल हुये। झगड़े का पता चलने पर शाक्यों और कोलियों ने सोचा कि क्यों न इस विवाद को युद्ध द्वारा हमेशा के लिये हल कर लिया जाये।

शाक्यों के सेनापति ने कोलियों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा के प्रश्न पर विचार करने के लिये शाक्यसंघ का एक अधिवेशन बुलाया और संघ के समक्ष युद्ध का प्रस्ताव रखा। सिद्धार्थ गौतम ने इस प्रस्ताव का विरोध किया और कहा युद्ध किसी प्रश्न का समाधान नहीं होता, युद्ध से किसी उद्देश्य की पूर्ति नहीं होगी। इससे एक दूसरे युद्ध का बीजारोपण होगा। सिद्धार्थ ने कहा मेरा प्रस्ताव है कि हम अपने में से दो आदमी चुनें और कोलियों से भी दो आदमी चुनने को कहें। फिर ये चारों मिलकर एक पांचवा आदमी चुनें। ये पांचों आदमी

मिलकर झगड़े का समाधान करें। सिद्धार्थ का प्रस्ताव बहुमत से अमान्य हो गया साथ ही शाक्य सेनापति का युद्ध का प्रस्ताव भारी बहुमत से पारित हो गया। शाक्यसंघ और शाक्य सेनापति से विवाद न सुलझने पर अन्ततः सिद्धार्थ के पास तीन विकल्प आये। तीन विकल्पों में से उन्हें एक विकल्प चुनना था (1) सेना में भर्ती होकर युद्ध में भाग लेना, (2) अपने परिवार के लोगों का सामाजिक बहिष्कार और उनके खेतों की जब्ती के लिए राजी होना, (3) फाँसी पर लटकना या देश निकाला स्वीकार करना। उन्होंने तीसरा विकल्प चुना और परिव्राजक बनकर देश छोड़ने के लिए राजी हो गए। परिव्राजक बनकर सर्वप्रथम सिद्धार्थ ने पाँच ब्राह्मणों के साथ अपने प्रश्नों के उत्तर ढूंढने शुरू किये। वे उचित ध्यान हासिल कर पाए, परंतु उन्हें अपने प्रश्नों के उत्तर नहीं मिले। फिर उन्होंने तपस्या करने की कोशिश की। वे इस कार्य में भी वे अपने गुरूओं से भी ज्यादा, निपुण निकले, परंतु उन्हे अपने प्रश्नों के उत्तर फिर भी नहीं मिले। फिर उन्होंने कुछ साथी इकठ्ठे किये और चल दिये अधिक कठोर तपस्या करने। ऐसे करते-करते छः वर्ष बाद, बिना अपने प्रश्नों के उत्तर पाएं, भूख के कारण मृत्यु के करीब से गुजरे, वे फिर कुछ और करने के बारे में सोचने लगे। इस समय, उन्हें अपने बचपन का एक पल याद आया, जब उनके पिता खेत तैयार करना शुरू कर रहे थे। उस समय वे एक आनंद भरे ध्यान में पड़ गये थे और उन्हे ऐसा महसूस हुआ था कि समय स्थिर हो गया है।

कठोर तपस्या छोड़कर उन्होंने अष्टांगिक मार्ग ढूंढ निकाला, जो बीच का मार्ग भी कहलाता जाता है क्योंकि यह मार्ग दोनों तपस्या और असंयम की पराकाष्ठाओं के बीच में है। अपने बदन में कुछ शक्ति डालने के लिये, उन्होंने एक बकरी-वाले से कुछ दूध ले लिया। वे एक पीपल के पेड़ (जो अब बोधि पेड़ कहलाता है) के नीचे बैठ गये प्रतिज्ञा करके कि वे सत्य जाने बिना उठेंगे नहीं। 35 की उम्र पर, उन्होंने बोधि पाई और वे बुद्ध बन गये। उनका पहिला धर्मोपदेश वाराणसी के पास सारनाथ में था।

अपने बाकी के 45 वर्ष के लिये, गौतम बुद्ध ने गंगा नदी के आसपास अपना धर्मोपदेश दिया, धनवान और कंगाल लोगों दोनों को। उन्होंने दो सन्यासियों के संघ की भी स्थापना की, जिन्होने बुद्ध के धर्मोपदेश को फैलाना जारी रखा।

बुद्ध के समकालीन

बुद्ध के प्रमुख गुरू थे- गुरू विश्वामित्र, अलारा, कलम, उद्दाका रामापुत्त, सूरज आजाद आदि।

प्रमुख शिष्य थे- आनंद, अनिरुद्ध, महाकश्यप, रानी खेमा (महिला), महाप्रजापति (महिला), भद्रिका, भृगु, किम्बाल, देवदत्त, उपाली आदि।

प्रमुख प्रचारक- अंगुलिमाल, मिलिंद (यूनानी सम्राट), सम्राट अशोक, ह्वेन त्सांग, फा श्येन, ई जिंग, हे चो, बोधिसत्व आदि।

गुरू विश्वामित्र–सिद्धार्थ ने गुरू विश्वामित्र के पास वेद और उपनिषद् तो पढ़े ही, राजकाज और युद्ध-विद्या की भी शिक्षा ली। कुश्ती, घुड़दौड़, तीर-कमान, रथ हांकने में कोई उसकी बराबरी नहीं कर पाता था।

गुरू अलारा कलम और उद्दाका रामापुत्त–ज्ञान की तलाश में सिद्धार्थ घूमते-घूमते अलारा कलम और उद्दाका रामापुत्त के पास पहुंचे। उनसे उन्होंने योग-साधना सीखी। कई माह तक योग करने के बाद भी जब ज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई तो उन्होंने उरुवेला पहुंच कर वहां घोर तपस्या की। छः साल बीत गए तपस्या करते हुए। सिद्धार्थ की तपस्या सफल नहीं हुई। तब एक दिन कुछ स्त्रियां किसी नगर से लौटती हुई वहां से निकलीं, जहां सिद्धार्थ तपस्या कर रहे थे। उनका एक गीत सिद्धार्थ के कान में पड़ा- 'वीणा के तारों को ढीला मत छोड़ दो। ढीला छोड़ देने से उनका सुरीला स्वर नहीं निकलेगा। पर तारों को इतना कसो भी मत कि वे टूट जाएं।' बात सिद्धार्थ को जंच गई। वह मान गए कि नियमित आहार-विहार से ही योग सिद्ध होता है। अति किसी बात की अच्छी नहीं। किसी भी प्राप्ति के लिए मध्यम मार्ग ही ठीक होता है। बस फिर क्या था कुछ ही समय बाद ज्ञान प्राप्त हो गया।

आनंद – यह बुद्ध और देवदत्त के भाई थे और बुद्ध के दस सर्वश्रेष्ठ शिष्यों में से एक हैं। यह लगातार बीस वर्षों तक बुद्ध की संगत में रहे। इन्हें गुरू का सर्वप्रिय शिष्य माना जाता था। आनंद को बुद्ध के निर्वाण के पश्चात प्रबोधन प्राप्त हुआ। वह अपनी स्मरण शक्ति के लिए प्रसिद्ध थे।

महाकश्यप–महाकश्यप मगध के ब्राह्मण थे, जो तथागत के नजदीकी शिष्य बन गए थे। इन्होंने प्रथम बौद्ध अधिवेशन की अध्यक्षता की थी।

रानी खेमा–रानी खेमा सिद्ध धर्मसंघिनी थीं। यह बीमबिसारा की रानी थीं और अति सुंदर थीं। आगे चलकर खेमा बौद्ध धर्म की अच्छी शिक्षिका बनीं।

महाप्रजापति–महाप्रजापति बुद्ध की माता महामाया की बहन थीं। इन दोनों ने राजा शुद्धोदन से शादी की थी। गौतम बुद्ध के जन्म के सात दिन पश्चात महामाया की मृत्यु हो गई। तत्पश्चात महाप्रजापति ने उनका अपने पुत्र जैसे पालन-पोषण किया। राजा शुद्धोदन की मृत्यु के बाद बौद्ध मठ में पहली महिला सदस्य के रूप में महाप्रजापिता को स्थान मिला था।

मिलिंद– मिलिंद यूनानी राजा थे। ईसा की दूसरी सदी में इनका अफगानिस्तान और उत्तरी भारत पर राज था। बौद्ध भिक्षु नागसेना ने इन्हें बौद्ध धर्म की दीक्षा दी और इन्होंने बौद्ध धर्म को अपना लिया था।

सम्राट अशोक– सम्राट अशोक बौद्ध धर्म के अनुयायी और अखंड भारत के सम्राट थे। इन्होंने ईसा पूर्व 207 ईस्वी में मौर्य वंश की नींव को मजबूत किया था। अशोक ने कई वर्षों तक युद्ध करने के बाद बौद्ध धर्म अपनाया था। इसके बाद उन्होंने युद्ध का बहिष्कार किया और शिकार करने पर पाबंदी लगाई। बौद्ध धर्म का तीसरा अधिवेशन अेशोक के राज्यकाल के 17वें साल में संपन्न हुआ।

सम्राट अशोक ने अपने पुत्र महेंद्र और पुत्री संघमित्र को धर्मप्रचार के लिए श्रीलंका भेजा। इनके द्वारा श्रीलंका के राजा तिष्य ने बौद्ध धर्म अपनाया और देवानामप्रिय की उपाधि धारण की, वहां 'महाविहार' नामक बौद्ध मठ की स्थापना की। यह देश आधुनिक युग में भी थेरवाद बौद्ध धर्म का गढ़ है।

कनिष्क–कुषाण राजा कनिष्क के विशाल साम्राज्य में विविध धर्मों के अनुयायी विभिन्न लोगों का निवास था। कनिष्क बौद्ध धर्म का अनुयायी था और बौद्ध इतिहास में उसका नाम अशोक के समान ही महत्त्व रखता है। आचार्य अश्वघोष ने उसे बौद्ध धर्म में दीक्षित किया था। इस आचार्य को वह पाटलिपुत्र से अपने साथ लाया था, और इसी से उसने बौद्ध धर्म की दीक्षा ली थी।

फाह्यान–फाह्यान का जन्म चीन के 'वु-वंग' नामक स्थान पर हुआ था। उसने लगभग 399 ई. में अपने कुछ मित्रों 'हुई-चिंग', 'ताओंचेंग', 'हुई-मिंग', 'हुईवेई' के साथ भारत यात्रा प्रारम्भ की। फाह्यान की भारत यात्रा का उदेश्य बौद्ध हस्तलिपियों एवं बौद्ध स्मृतियों को खोजना था। फाह्यान बौद्ध धर्म का अनुयायी था, इसीलिए फाह्यान ने उन्ही स्थानों के भ्रमण को महत्त्व दिया, जो बौद्ध धर्म से संबंधित थे।

ह्वेन त्सांग–भारत में ह्वेन त्सांग ने बुद्ध के जीवन से जुड़े सभी पवित्र स्थलों का भ्रमण किया और उन्होंने अपना अधिकांश समय नालंदा मठ में बिताया, जो बौद्ध शिक्षा का प्रमुख केंद्र था। यहां उन्होंने संस्कृत, बौद्ध दर्शन एवं भारतीय चिंतन में दक्षता हासिल करने के बाद अपना संपूर्ण जीवन बौद्ध धर्मग्रंथों के अनुवाद में लगा दिया। उसने लगभग 657 ग्रंथों का अनुवाद किया था और 520 पेटियों में उन्हें भारत से चीन ले गया था।। इस विशाल खंड के केवल छोटे से हिस्से (1330 अध्यायों में करीब 73 ग्रंथ) के ही अनुवाद में महायान के कुछ अत्यधिक महत्वपूर्ण ग्रंथ शामिल हैं।

पालि साहित्य

बुद्ध की शिक्षाओं बुद्ध की शिक्षाओं का ज्ञान हमें पालि त्रिपिटक से ही प्राप्त होता है।

त्रिपिटक (तिपिटक) बुद्ध धर्म का मुख्य ग्रन्थ है। यह पालिभाषा में लिखा गया है। यह ग्रन्थ बुद्ध के परिनिर्वाण के पश्चात बुद्ध के द्वारा दिया गया उपदेशों को सूत्रबद्ध करने का सबसे वृहद प्रयास है। बुद्ध के उपदेश को इस ग्रन्थ में सूत्र (सुत्त) के रूप में प्रस्तुत किया गया है। सुत्रें को वर्ग (वग्ग) में बांधा गया है। वग्ग को निकाय (सुत्तपिटक) में वा खण्ड में समाहित किया गया है। निकायों को पिटक (अर्थः टोकरी) में एकिकृत किया गया है। इस प्रकार से तीन पिटक निर्मित हैं जिन के संयोजन को त्रि-पिटक कहा जाता है।

पालिभाषा का त्रिपिटक थेरवादी (और नवयान) बुद्ध परम्परा में श्रीलंका, थाइलैंड, बर्मा, लाओस, कैम्बोडिया, भारत आदि राष्ट्र के बौद्ध धर्म अनुयायी पालना करते है। पालि के तिपिटक को संस्कृत में भी भाषान्तरण किया गया है, जिस को त्रिपिटक कहते है। संस्कृत का पूर्ण त्रिपिटक अभी अनुपलब्ध है। वर्तमान में संस्कृत त्रिपिटक प्रयोजन का जीवित परम्परा सिर्फ नेपाल के नेवार जाति में उपलब्ध है। इस के अलावा तिब्बत, चीन, मंगोलिया, जापान, कोरिया, वियतनाम, मलेशिया, रूस आदि देश में संस्कृत मूल मन्त्र के साथ में स्थानीय भाषा में बौद्ध साहित्य परम्परा पालना करते हैं।

बुद्ध की शिक्षाएँ

गौतम बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद, बौद्ध धर्म के अलग-अलग संप्रदाय उपस्थित हो गये हैं, परंतु इन सब के बहुत से सिद्धांत मिलते हैं।

तथागत बुद्ध ने अपने अनुयायिओं को चार आर्यसत्य, अष्टांगिक मार्ग, दस पारमिता, पंचशील आदि शिक्षाओं को प्रदान किए हैं।

चार आर्य सत्य

तथागत बुद्ध का पहला धर्मोपदेश, जो उन्होंने अपने साथ के कुछ साधुओं को दिया था, इन चार आर्य सत्यों के बारे में था। बुद्ध ने चार आर्य सत्य बताये हैं।

1. दुःख—इस दुनिया में दुःख है। जन्म में, बूढे होने में, बीमारी में, मौत में, प्रियतम से दूर होने में, नापसंद चीजों के साथ में, चाहत को न पाने में, सब में दुःख है।

2. दु:ख कारण–तृष्णा, या चाहत, दु:ख का कारण है और फिर से सशरीर करके संसार को जारी रखती है।

3. दु:ख निरोध–दु:ख-निरोध के आठ साधन बताये गये हैं जिन्हें 'अष्टांगिक मार्ग' कहा गया है।

तृष्णा से मुक्ति पाई जा सकती है।

4. दु:ख निरोध का मार्ग–तृष्णा से मुक्ति अष्टांगिक मार्ग के अनुसार जीने से पाई जा सकती है।

अष्टांगिक मार्ग

साँचा–डंपद–अष्टांगिक मार्ग

बौद्ध धर्म के अनुसार, चौथे आर्य सत्य का आर्य अष्टांग मार्ग है दु:ख निरोध पाने का रास्ता। गौतम बुद्ध कहते थे कि चार आर्य सत्य की सत्यता का निश्चय करने के लिए इस मार्ग का अनुसरण करना चाहिए –

1. सम्यक् दृष्टि- वस्तुओं के यथार्थ स्वरूप को जानना ही सम्यक् दृष्टि है।

2. सम्यक् संकल्प- आसक्ति, द्वेष तथा हिंसा से मुक्त विचार रखना ही सम्यक् संकल्प है।

3. सम्यक् वाक- सदा सत्य तथा मृदु वाणी का प्रयोग करना ही सम्यक् वाक् है।

4. सम्यक् कर्मांत- इसका आशय अच्छे कर्मों में संलग्न होने तथा बुरे कर्मों के परित्याग से है।

5. सम्यक् आजीव- विशुद्ध रूप से सदाचरण से जीवन-यापन करना ही सम्यक् आजीव है।

6. सम्यक् व्यायाम- अकुशल धर्मों का त्याग तथा कुशल धर्मों का अनुसरण ही सम्यक् व्यायाम है।

7. सम्यक् स्मृति- इसका आशय वस्तुओं के वास्तविक स्वरूप के संबंध में सदैव जागरूक रहना है।

8. सम्यक् समाधि– चित्त की समुचित एकाग्रता ही सम्यक् समाधि है।

कुछ लोग आर्य अष्टांग मार्ग को पथ की तरह समझते है, जिसमें आगे बढ़ने के लिए, पिछले के स्तर को पाना आवश्यक है। और लोगों को लगता है

कि इस मार्ग के स्तर पर सब साथ-साथ पाए जाते है। मार्ग को तीन हिस्सों में वर्गीकृत किया जाता है–प्रज्ञा, शील और समाधि।

पंचशील

भगवान बुद्ध ने अपने अनुयायिओं को पांच शीलों का पालन करने की शिक्षा दी हैं।

1. अहिंसा

पालि में–पाणातिपाता वेरमनी सीक्खापदम् सम्मादीयामी !
अर्थ–मैं प्राणि-हिंसा से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

2. अस्तेय

पाली में–आदिन्नादाना वेरमणी सिक्खापदम् समादियामी
अर्थ–मैं चोरी से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

3. अपरिग्रह

पाली में–कामेसूमीच्छाचारा वेरमणी सिक्खापदम् समादियामी
अर्थ–मैं व्यभिचार से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

4. सत्य

पाली नें–मुसावादा वेरमणी सिक्खापदम् समादियामी
अर्थ–मैं झूठ बोलने से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

5. सभी नशा से विरत

पाली में–सुरामेरय मज्जपमादठटाना वेरमणी सिक्खापदम् समादियामी।
अर्थ–मैं पक्की शराब (सुरा) कच्ची शराब (मेरय), नशीली चीजों (मज्जपमादठटाना) के सेवन से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

बोधि

गौतम बुद्ध से पाई गई ज्ञानता को बोधि कहलाते हैं। माना जाता है कि बोधि पाने के बाद ही संसार से छुटकारा पाया जा सकता है। सारी पारमिताओं

(पूर्णताओं) की निष्पत्ति, चार आर्य सत्यों की पूरी समझ और कर्म के निरोध से ही बोधि पाई जा सकती है। इस समय, लोभ, दोष, मोह, अविद्या, तृष्णा और आत्मां में विश्वास सब गायब हो जाते हैं। बोधि के तीन स्तर होते हैं : श्रावकबोधि, प्रत्येकबोधि और सम्यकसंबोधि। सम्यकसंबोधि बौद्ध धर्म की सबसे उन्नत आदर्श मानी जाती है।

भरहुत

बौद्ध दर्शन

गौतम बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद, बौद्ध धर्म के अलग-अलग संप्रदाय उपस्थित हो गये हैं, परंतु इन सब के बहुत से सिद्धांत मिलते हैं। सभी बौद्ध सम्प्रदाय तथागत बुद्ध के मूल सिद्धांत ही मानते हैं।

प्रतीत्यसमुत्पाद

प्रतीत्यसमुत्पाद का सिद्धांत कहता है कि कोई भी घटना केवल दूसरी घटनाओं के कारण ही एक जटिल कारण-परिणाम के जाल में विद्यमान होती है। प्राणियों के लिये, इसका अर्थ है कर्म और विपाक (कर्म के परिणाम) के अनुसार अनंत संसार का चक्र। क्योंकि सब कुछ अनित्य और अनात्मं (बिना आत्मा के) होता है, कुछ भी सच में विद्यमान नहीं है। हर घटना मूलतः शून्य होती है। परंतु, मानव, जिनके पास ज्ञान की शक्ति है, तृष्णा को, जो दुःख का कारण है, त्यागकर, तृष्णा में नष्ट की हुई शक्ति को ज्ञान और ध्यान में बदलकर, निर्वाण पा सकते हैं। तृष्णा शून्य जीवन केवल विपश्यना से संभव है।

क्षणिकवाद

इस दुनिया में सब कुछ क्षणिक है और नश्वर है। कुछ भी स्थायी नहीं। परन्तु वैदिक मत से विरोध है।

अनात्मवाद

आत्मा का अर्थ 'मैं' होता है। किन्तु, प्राणी शरीर और मन से बने है, जिसमें स्थायित्व नहीं है। क्षण-क्षण बदलाव होता है। इसलिए, 'मैं' अर्थात आत्मा नाम की कोई स्थायी चीज नहीं। जिसे लोग आत्मा समझते हैं, वो चेतना का अविच्छिन्न प्रवाह है। आत्मा का स्थान मन ने लिया है।

आत्मा होती है वह ना तो नष्ट होती है न हीं उत्पन्न वह सदैव से थी है और रहेगी

अनीश्वरवाद

बुद्ध ने ब्रह्म-जाल सूत् में सृष्टि का निर्माण कैसा हुआ, ये बताया है। सृष्टि का निर्माण होना और नष्ट होना बार-बार होता है। ईश्वर या महाब्रह्मा सृष्टि का निर्माण नहीं करते क्योंकि दुनिया प्रतीत्यसमुत्पाद अर्थात कार्यकरण-भाव के नियम पर चलती है। भगवान बुद्ध के अनुसार, मनुष्यों के दु:ख और सुख के लिए कर्म जिम्मेदार है, ईश्वर या महाब्रह्मा नहीं। पर अन्य जगह बुद्ध ने सर्वोच्च सत्य को अवर्णनीय कहा है।

शून्यतावाद

शून्यता महायान बौद्ध संप्रदाय का प्रधान दर्शन है। वह अपने ही संप्रदाय के लोगों को महत्व देते हैं।

यथार्थवाद

बौद्ध धर्म का मतलब निराशावाद नहीं है। दुख का मतलब निराशावाद नहीं है, लेकिन सापेक्षवाद और यथार्थवाद है। बुद्ध, धम्म और संघ बौद्ध धर्म के तीन त्रिरत्ने हैं। भिक्षु, भिक्षुणी, उपसका और उपसिका संघ के चार अवयव हैं।

बोधिसत्व

दस पारमिताओं का पूर्ण पालन करने वाला बोधिसत्व कहलाता है। बोधिसत्व जब दस बलों या भूमियों (मुदिता, विमला, दीप्ति, अर्चिष्मती, सुदुर्जया, अभिमुखी, दूरंगमा, अचल, साधुमती, धम्म-मेघा) को प्राप्त कर लेते हैं तब 'बुद्ध' कहलाते हैं। बुद्ध बनना ही बोधिसत्व के जीवन की पराकाष्ठा है। इस पहचान को बोधि (ज्ञान) नाम दिया गया है। कहा जाता है कि बुद्ध शाक्यमुनि केवल एक बुद्ध हैं-उनके पहले बहुत सारे थे और भविष्य में और होंगे। उनका कहना था कि कोई भी बुद्ध बन सकता है अगर वह दस पारमिताओं का पूर्ण पालन करते हुए बोधिसत्व प्राप्त करे और बोधिसत्व के बाद दस बलों या भूमियों को प्राप्त करे। बौद्ध धर्म का अन्तिम लक्ष्य है सम्पूर्ण मानव समाज से दु:ख का अंत। 'मैं केवल एक ही पदार्थ सिखाता हूँ-दु:ख है, दु:ख का

कारण है, दु:ख का निरोध है, और दु:ख के निरोध का मार्ग है' (बुद्ध)। बौद्ध धर्म के अनुयायी अष्टांगिक मार्ग पर चलकर न के अनुसार जीकर अज्ञानता और दु:ख से मुक्ति और निर्वाण पाने की कोशिश करते हैं।

सम्प्रदाय

बौद्ध धर्म में संघ का बडा स्थान है। इस धर्म में बुद्ध, धम्म और संघ को 'त्रिरत्न' कहा जाता है। संघ के नियम के बारे में गौतम बुद्ध ने कहा था कि छोटे नियम भिक्षुगण परिवर्तन कर सकते है। उन के महापरिनिर्वाण पश्चात संघ का आकार में व्यापक वृद्धि हुआ। इस वृद्धि के पश्चात विभिन्न क्षेत्र, संस्कृति, सामाजिक अवस्था, दीक्षा, आदि के आधार पर भिन्न लोग बुद्ध धर्म से आबद्ध हुए और संघ का नियम धीरे-धीरे परिवर्तन होने लगा। साथ ही में अंगुत्तर निकाय के कालाम सुत्त में बुद्ध ने अपने अनुभव के आधार पर धर्म पालन करने की स्वतन्त्रता दी है। अत:, विनय के नियम में परिमार्जन/परिवर्तन, स्थानीय सांस्कृतिक/भाषिक पक्ष, व्यक्तिगत धर्म का स्वतन्त्रता, धर्म के निश्चित पक्ष में ज्यादा वा कम जोड आदि कारण से बुद्ध धर्म में विभिन्न सम्प्रदाय वा संघ में परिमार्जित हुए। वर्तमान में, इन संघ में प्रमुख सम्प्रदाय या पंथ थेरवाद, महायान और वज्रयान है। भारत में बौद्ध धर्म का नवयान संप्रदाय है, जो पूर्णत शुद्ध, मानवतावादी और विज्ञानवादी है।

थेरवाद

साँचा–डंपद–थेरवाद

श्रावकयान

प्रत्येकबुद्धयान

थेरवाद बुद्ध के मौलिक उपदेश ही मानता है।

श्रीलंका, थाईलैंड, म्यान्मार, कम्बोडिया, लाओस, बांग्लादेश, नेपाल आदि देशों में थेरवाद बौद्ध धर्म का प्रभाव हैं।

महायान

साँचा–डंपद–महायान

महायान बुद्ध की वास्तविक शिक्षाओं का पालन नहीं करता।

बुद्ध के अलावा हजारों बोधिसत्व की पूजा करता है।

बोधिसत्त्वयान

बोधिसत्त्वसुत्रयान

बोधिसत्त्वतन्त्रयान/वज्रयान

महायान में बुद्ध की पूजा करता है।

चीन, जापान, उत्तर कोरिया, वियतनाम, दक्षिण कोरिया आदि देशों में प्रभाव हैं।

वज्रयान

साँचा–डंपद–वज्रयान

वज्रयान को तिब्बती तांत्रिक धर्म भी कहां जाता है।

भूटान में राष्ट्रधर्म

भूटान, तिब्बत और मंगोलिया में प्रभाव

नवयान

साँचा–डंपद–नवयान

बुद्ध के मूल सिद्धांतों का अनुसरण

महायान, वज्रयान, थेरवाद के कई शुद्ध सिद्धांत

अंधविश्वास नहीं है।

विज्ञानवाद पर विश्वास

भारत में (मुख्यत महाराष्ट्र में) प्रभाव

प्रमुख तीर्थ

बौद्ध धर्म के तीर्थ स्थल

भगवान बुद्ध के अनुयायीओं के लिए विश्व भर में पांच मुख्य तीर्थ मुख्य माने जाते हैं–

तीर्थ यात्रा

बौद्ध

धार्मिक स्थल

Dharma Wheel-svg

चार मुख्य स्थल

लुम्बिनी–बोध गया

सारनाथ–कुशीनगर

चार अन्य स्थल

श्रावस्ती–राजगीर
सनकिस्सा–वैशाली

अन्य स्थल

पटना–गया
कौशाम्बी–मथुरा
कपिलवस्तु–देवदहा
केसरिया–पावा
नालंदा–वाराणसी

बाद के स्थल

साँची–रत्नागिरी
एल्लोरा–अजंता

भरहुत

संपादन

(1) लुम्बिनी–जहां भगवान बुद्ध का जन्म हुआ।
(2) बोधगया–जहां बुद्ध ने ज्ञान प्राप्त हुआ।
(3) सारनाथ–जहां से बुद्ध ने दिव्यज्ञान देना प्रारंभ किया।
(4) कुशीनगर–जहां बुद्ध का महापरिनिर्वाण हुआ।
(5) दीक्षाभूमि, नागपुर–जहां भारत में बौद्ध धर्म का पुनःस्थान हुआ।

लुम्बिनी

माया देवी मंदिर, लुंबिनी, नेपाल

यह स्थान नेपाल की तराई में नौतनवां रेलवे स्टेशन से 25 किलोमीटर और गोरखपुर–गोंडा लाइन के नौगढ़ स्टेशन से करीब 12 किलोमीटर दूर है। अब तो नौगढ़ से लुम्बिनी तक पक्की सडक भी बन गई है। ईसा पूर्व 563 में राजकुमार सिद्धार्थ गौतम (बुद्ध) का जन्म यहीं हुआ था। हालांकि, यहां के बुद्ध के समय के अधिकतर प्राचीन विहार नष्ट हो चुके हैं। केवल सम्राट अशोक का एक स्तंभ

अवशेष के रूप में इस बात की गवाही देता है कि भगवान बुद्ध का जन्म यहां हुआ था। इस स्तंभ के अलावा एक समाधि स्तूप में बुद्ध की एक मूर्ति है। नेपाल सरकार ने भी यहां पर दो स्तूप और बनवाए हैं।

बोधगया

महाबोधि विहार, बोधगया, बिहार, भारत

करीब छह साल तक जगह-जगह और विभिन्न गुरूओं के पास भटकने के बाद भी बुद्ध को कहीं परम ज्ञान न मिला। इसके बाद वे गया पहुंचे। आखिर में उन्होंने प्रण लिया कि जब तक असली ज्ञान उपलब्ध नहीं होता, वह पिपल वृक्ष के नीचे से नहीं उठेंगे, चाहे उनके प्राण ही क्यों न निकल जाएं। इसके बाद करीब छह दिन तक दिन रात एक पिपल वृक्ष के नीचे भूखे-प्यासे तप किया। आखिर में उन्हें परम ज्ञान या बुद्धत्व उपलब्ध हुआ। सिद्धार्थ गौतम अब बुद्धत्व पाकर आकाश जैसे अनंत ज्ञानी हो चुके थे। जिस पिपल वृक्ष के नीचे वह बैठे, उसे बोधि वृक्ष यानी ज्ञान का वृक्ष कहा जाता है। वहीं गया को तक बोधगया (बुद्ध गया) के नाम से जाना जाता है।

सारनाथ

धामेक स्तूप के पास प्राचीण बौद्ध मठ, सारनाथ, उत्तर प्रदेश, भारत

बनारस छावनी स्टेशन से छह किलोमीटर, बनारस-सिटी स्टेशन से साढ़े तीन किलोमीटर और सडक मार्ग से सारनाथ चार किलोमीटर दूर पड़ता है। यह पूर्वोत्तर रेलवे का स्टेशन है और बनारस से यहां जाने के लिए सवारी तांगा और रिक्शा आदि मिलते हैं। सारनाथ में बौद्ध-धर्मशाला है। यह बौद्ध तीर्थ है। लाखों की संख्या में बौद्ध अनुयायी और बौद्ध धर्म में रुचि रखने वाले लोग हर साल यहां पहुंचते हैं। बौद्ध अनुयायीओं के यहां हर साल आने का सबसे बड़ा कारण यह है कि भगवान बुद्ध ने अपना प्रथम उपदेश यहीं दिया था। सदियों पहले इसी स्थान से उन्होंने धर्म-चक्र-प्रवर्तन प्रारंभ किया था। बौद्ध अनुयायी सारनाथ के मिट्टी, पत्थर एवं कंकरों को भी पवित्र मानते हैं। सारनाथ की दर्शनीय वस्तुओं में अशोक का चतुर्मुख सिंह स्तंभ, भगवान बुद्ध का प्राचीन मंदिर, धामेक स्तूप, चौखंडी स्तूप, आदि शामिल हैं।

कुशीनगर

महापरिनिर्वाण स्तूप, कुशीनगर, उत्तर प्रदेश, भारत

कुशीनगर बौद्ध अनुयायीओं का बहुत बड़ा पवित्र तीर्थ स्थल है। भगवान बुद्ध कुशीनगर में ही महापरिनिर्वाण को प्राप्त हुए। कुशीनगर के समीप हिरन्यवती नदी के समीप बुद्ध ने अपनी आखरी सांस ली। रंभर स्तूप के निकट उनका अंतिम संस्कार किया गया। उत्तर प्रदेश के जिला गोरखपुर से 55 किलोमीटर दूर कुशीनगर बौद्ध अनुयायीओं के अलावा पर्यटन प्रेमियों के लिए भी खास आकर्षण का केंद्र है। 80 वर्ष की आयु में शरीर त्याग से पहले भारी संख्या में लोग बुद्ध से मिलने पहुंचे। माना जाता है कि 120 वर्षीय ब्राह्मण सुभद्र ने बुद्ध के वचनों से प्रभावित होकर संघ से जुडने की इच्छा जताई। माना जाता है कि सुभद्र आखरी भिक्षु थे जिन्हें बुद्ध ने दीक्षित किया।

दीक्षाभूमि

दीक्षाभूमि, नागपुर, महाराष्ट्र, भारत

दीक्षाभूमि, नागपुर महाराष्ट्र राज्य के नागपुर शहर में स्थित पवित्र एवं महत्त्वपूर्ण बौद्ध तीर्थ स्थल है। बौद्ध धर्म भारत में 12वीं शताब्दी तक रहा, बाद में हिंदूओं और मुस्लिमों के हिंसक संघर्ष से शांतिवादी बौद्ध धर्म का प्रभाव कम होता गया और 12वीं शताब्दी में जैसे बौद्ध धर्म भारत से गायब हो गया। 12वीं से 20वीं शताब्दी तक हिमालयीन प्रदेशों के अलावा पूरे भारत में बौद्ध धर्म के अनुयायीओं की संख्या बहूत ही कम रही। लेकिन, दलितों के मसीहा डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर ने 20वी शताब्दी के मध्य में अशोक विजयादशमी के दिन 14 अक्टूबर, 1956 को पहले स्वयं अपनी पत्नी डॉ. सविता आंबेडकर के साथ बौद्ध धर्म की दीक्षा ली और फिर अपने 5,00,000 हिंदू दलित समर्थकों को बौद्ध धर्म की दीक्षा दी। बौद्ध धर्म की दीक्षा देने के लिए बाबासाहेब ने त्रिशरण, पंचशील एवं अपनी 22 प्रतिज्ञाएं अपने नव-बौद्धों को दी। अगले दिन नागपुर में 15 अक्टूबर को फिर बाबासाहेब ने 3,00,000 लोगों को धम्म दीक्षा देकर बौद्ध बनाया, तीसरे दिन 16 अक्टूबर को बाबासाहेब दीक्षा देने हेतु चंद्रपुर गये, वहां भी उन्होंने 3,00,000 लोगों को बौद्ध धम्म की दीक्षा दी। इस तरह सिर्फ तीन दिन में डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ने 10,00,000 से अधिक लोगों को बौद्ध धर्म की दीक्षा देकर विश्व के बौद्धों की जनसंख्या 10 लाख बढ़ा दी। यह विश्व का सबसे बड़ा धार्मिक रूपांतरण या धर्मांतरण माना जाता है। बौद्ध विद्वान,

बोधिसत्व डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर ने भारत में बौद्ध धर्म का पुन:त्थान किया। एक सर्वेक्षण के अनुसार मार्च 1959 तक लगभग 1.5 से 2 करोड़ दलितों ने बौद्ध धर्म ग्रहण किया। 1956 से आज तक हर साल यहाँ देश और विदशों से 20 से 25 लाख बुद्ध और बाबासाहेब के बौद्ध अनुयायी दर्शन करने के लिए आते है। इस प्रवित्र एवं महत्त्वपूर्ण तीर्थ स्थल को महाराष्ट्र सरकार द्वारा 'अ' वर्ग पर्यटन एवं तीर्थ स्थल का दर्जा दिया गया है।

बौद्ध समुदाय

संपूर्ण विश्व में लगभग 53 करोड़ बौद्ध हैं। इनमें से लगभग 70% महायानी बौद्ध और शेष 25% से 30% थेरावादी, नवयानी (भारतीय) और वज्रयानी बौद्ध है। महायान और थेरवाद (हीनयान), नवयान, वज्रयान के अतिरिक्त बौद्ध धर्म में इनके अन्य कई उपसंप्रदाय या उपवर्ग भी हैं, परन्तु इन का प्रभाव बहुत कम है। सबसे अधिक बौद्ध पूर्वी एशिया और दक्षिण पूर्व एशिया के देशों में रहते हैं। दक्षिण एशिया के दो देशों में भी बौद्ध धर्म बहुसंख्यक है। अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, अफ्रीका और यूरोप जैसे महाद्वीपों में भी बौद्ध रहते हैं। विश्व में लगभग 8 से अधिक देश ऐसे हैं जहां बौद्ध बहुसंख्यक या बहुमत में हैं। विश्व में कई देश ऐसे भी हैं जहां की बौद्ध जनसंख्या के बारे में कोई विश्वसनीय जानकारी उपलब्ध नहीं है।

9

आधुनिककालीन हिंदी साहित्य का इतिहास–छायावाद

छायावाद (1918 से 1937 ई.)

द्विवेदी युग के अंतिम चरण में स्वच्छंदतावाद की धारा वेगवती होती चली गई थी। यों तो स्वच्छंदतावाद की चर्चा श्रीधर पाठक की रचनाओं को देखकर होने लगी थी किंतु मुकुटधर पांडे, मैथिलीशरण गुप्त, प्रसाद और पंत ने भी अपनी कविता में यत्र-तत्र नए भाव और नवीन अभिव्यंजना शैली को स्थान देना प्रारंभ कर दिया था।

यह स्वच्छंद नूतन पद्धति अपना रास्ता निकाल ही रही थी कि श्री रवींद्रनाथ की रहस्यात्मक कविताओं की धूम हुई और कई कवि एक साथ रहस्यवाद और प्रतीकवाद या चित्रभाषावाद को ही एकांत ध्येय बनाकर चल पड़े। चित्रभाषा या अभिव्यंजना पद्धति पर ही जब लक्ष्य टिक गया तब उसके प्रदर्शन के लिए लौकिक या अलौकिक प्रेम का क्षेत्र ही काफी समझा गया। इस बंधे हुए क्षेत्र के भीतर चलने वाले काव्य ने छायावाद का नाम ग्रहण किया।

जबलपूर से प्रकाशित 'श्री शारदा' पत्रिका में मुकुटधर पाण्डेय की एक लेख माला 'हिन्दी में छायावाद' शीर्षक से निकली यहीं से अधिकारिक तौर पर छायावाद की विशेषताओं का उद्‌घाटन हुआ। आचार्य शुक्ल नें अपने इतिहास में

सन् 1918 से तीर्थ उत्थान का आरम्भ माना है, किन्तु उन्होंनें यह भी स्वीकार किया है कि छायावादी ढंग की कविताओं का चलन तत्कालीन पत्र–पत्रिकाओं में सन् 1910 से ही हो गया था। 'श्री पाल सिंह क्षेम' नें जयशंकर प्रसाद को छायावाद का प्रवर्तक घोषित किया है। परमाण स्वरूप सन् 1909 में 'इन्दु' के प्रकाशन की बात कही है, जिसमें चित्रधार, कानन कुसुम, झरना आदि छप चुकी थी।

परिवेश

छायावाद का युग भारत के लिए अस्मिता की खोज का युग है। सदियों की दासता के कारण भारतीय जनता आत्मकेंद्रित होती हुई रूढ़िग्रस्त हो गई थी। पाश्चात्य साम्राज्यवादियों के आगमन ने देश में एक विराट तूफान पैदा कर दिया था, जिसके कारण रूढ़ियों में सुप्त देश की आत्मा पूरी शक्ति और उद्वेलन के साथ जाग उठी।

पाश्चात्य ढंग की शिक्षा ने, विशेषकर अंग्रेजी की शिक्षा ने, देश के बुद्धिजीवियों के सामने एक नए क्षितिज का उद्घाटन किया। परिणामस्वरूप भारतीय मनीषी अपने परिवेश की त्रासपूर्ण विघटनमयी स्थिति के प्रति सजग हुए और उसके व्यापक सुधार की आवश्यकता की ओर उनका ध्यान आकर्षित हुआ। इसका एक और कारण भी था, जिसका संबंध इसाई धर्म के प्रचार से है। सत्ता का संबल पाकर ईसाई धर्म प्रचारक पाश्चात्य जीवन पद्धति की गरिमा और भारतीय सांस्कृतिक निस्सारता का प्रचार करने लगे।

राजनीतिक दासता के साथ–साथ इस सांस्कृतिक आक्रमण ने यहां की चिंतकों को और भी अधिक आंदोलित कर दिया। इसका परिणाम था भारतीय पुनर्जागरण का व्यापक आंदोलन, जिसके जन्मदाता थे राजा राममोहन राय। स्वामी दयानंद, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, गोपाल कृष्ण गोखले, बाल गंगाधर तिलक, महात्मा गांधी आदि इसी विराट आंदोलन के नेता थे। इन सब महापुरुषों ने देश की अतीत परंपरा से मूल्यवान तत्त्वों को खोज कर उन्हें नए जीवन के अनुरूप ढालने का प्रयास किया।

सांस्कृतिक दृष्टि से छायावाद युग में यथार्थ और संभावना के बीच गहरी खाई दिखाई देती है। सदियों से रूढ़िग्रस्त भारत ने जब एकाएक अपने आपको वैज्ञानिक समृद्धि से पूर्ण पाश्चात्य सभ्यता के सम्मुख खड़ा पाया, तो उसे अपने और युग के बीच उस गहरी खाई का एहसास हुआ। ध्यान देने की बात यह है

कि भारत में विज्ञान और यंत्रों का विकास सहज स्वाभाविक रूप से उसके अपने प्रयासों के फलस्वरूप नहीं हुआ था, अपितु यह यहां साम्राज्यवाद के साथ आए और भारतीय विकास का साधन बनकर नहीं, वरन शोषण का साधन बन कर आए।

नवीन शिक्षा पद्धति, अंग्रेजी के प्रभाव और अंग्रेजी से प्रभावित बांगला साहित्य के संपर्क ने व्यक्तिवादी भावना को जगाया, जिससे व्यक्ति का अहं उद्दीप्त हो उठा। जो कुछ भी इस उदित अहम के विरोध में आया, उसे अस्वीकार करने की, उसका विरोध करने की कोशिश की गई। इसलिए एक ओर तो इस युग के काव्य में द्विवेदीयुगीन नैतिकता और स्थूल की प्रतिक्रिया दिखाई देती है और दूसरी ओर विदेशी दासता के प्रति विद्रोह का स्वर सुनाई देता है।

उदाहरणार्थ, राष्ट्रीय सांस्कृतिक धारा के कवियों ने विदेशी शासन का विरोध किया और जनता में आत्मविश्वास की भावना उत्पन्न की। यह विद्रोह छायावादी कवियों में भी व्यापक रूप में दिखाई देता है उन्होंने विषय, भाव, भाषा, छंद आदि सभी क्षेत्रों में नए मूल्यों की प्रतिष्ठा का प्रयास किया। सभी छायावादी कवियों की आरंभिक रचनाओं में निराशा और कुंठा का स्वर दिखाई देता है।

परिभाषा

(क) आचार्य नंददुलारे बाजपेयी ने छायावाद को परिभाषित करते हुए लिखा है 'मानव अथवा प्रकृति के स्वच्छ में किंतु व्यक्त सौंदर्य में अध्यात्मिक छाया का भान मेरे विचार से छायावाद की सर्वमान्य व्याख्या हो सकती है।' किंतु आध्यात्मिक शब्द से चिढ़ने वाले लोग उसका एक ही अर्थ जानते हैं आत्मा और परमात्मा का अभेद। उन्होंने आधुनिक साहित्य में कहा है कि आधुनिक छायावादी काव्य किसी क्रमागत अध्यात्म पद्धति लेकर नहीं चलता।

(ख) डॉ. नगेन्द्र ने छायावाद को स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह कहा है। यह विद्रोह भाव तथा शैली दोनों स्तरों पर है। स्थूल से कदाचित् उनका अभिप्राय पूर्व-स्वच्छन्दतावादी इतिवृत्तात्मकता से ही है। किन्तु यह विद्रोह बद्ध काव्यरीति और दृष्टिकोण के विरुद्ध है। पंत के 'पल्लव' की भूमिका से जाहिर है, सारा काव्यान्दोलन रीतिबद्धता के विरोध में है। पर वे शुक्ल जी की इस बात से

सहमत नहीं हैं कि छायावाद मात्र विशिष्ट काव्यशैली है। शुक्ल जी ने छायावाद की काव्यशैली की प्रशंसा तो की है पर उसकी भावभूमि पर संकीर्णता का आरोप लगाया है। यदि वक्तव्य वस्तु नई नहीं है तो भाषा–शैली की नवीनता अलंकरण मात्र होगी। एक को अच्छा तथा दूसरे को संकीर्ण कहना एक विचित्र अन्तर्विरोध है।

(ग) रामचंद्र शुक्ल ने छायावादी काव्यभाषा का संबंध फ्रांसीसी प्रतीकवाद से जोड़ा है। जब इसे रोमैटिक अंग्रेजी कविता के साथ संबद्ध नहीं किया गया तब हिन्दी की छायावादी काव्यभाषा से संबद्ध करना दुराग्रह नहीं तो क्या है। फ्रांसीसी प्रतीकवाद का प्रभाव ब्रिटेन के रोमैटिक कवियों पर नहीं है बल्कि इलिएट, एट्स, आडेन, डायलन टामस आदि पर है। उसी प्रकार फ्रांसीसी प्रतीकवादियों का प्रभाव हिन्दी के आधुनिक कवियों–अज्ञेय, शमशेर बहादुर सिंह आदि पर है।

प्रतिनिधि कवि

जयशंकर प्रसाद

जयशंकर प्रसाद (1890–1937) छायावाद के चार स्तंभों में से एक हैं। उनकी रचित कामायनी छायावाद की सर्वश्रेष्ठ रचना मानी जाती है। प्रारंभ में इन्होंने ब्रजभाषा में कविताएं लिखीं किंतु बाद में खड़ी बोली में कविता करने लगे इनके काव्य कृतियों में भाषा, छंद, भाव आदि की दृष्टि से अनेकरूपता दिखाई देती है। कवि होने के साथ–साथ ये गंभीर चिंतक भी थे। 'कामायनी' में इन्होंने यंत्र ओर तर्क पर आधारित समाज के चित्रण के साथ–साथ शैव दर्शन की अभिव्यक्ति भी की है।

इनकी काव्य रचनाएँ हैं– 'उर्वशी' (1909), 'वनमिलन' 1909, 'प्रेमराज्य' (1909), 'अयोध्या का उद्धार'(1910), 'शोकोच्छ्वास' (1910)', 'वभ्रूवाहन' (1911), ' कानन कुसुम' (1913), 'प्रेम पथिक ' (1913), ' करुणालय' (1913), 'महाराणा का महत्व' (1914), 'झरना' (1918), 'आंसू' (1925), 'लहर' (1933) और 'कामायनी' (1935)। 'प्रेम–पथिक' को रचना पहले ब्रजभाषा में की गयी थी, किंतु बाद में उसे खड़ोबोली में रूपांतरित कर दिया गया। यह भी उल्लेखनीय है कि 'कानन कुसुम' और 'झरना' के परवर्ती

संस्करणों में कवि ने कुछ नई कविताओं का समावेश किया तथा 'आंसू' में चौंसठ छंद और जोड़ दिए। स्पष्ट है कि 'झरना' के पूर्व की सभी रचनाएं दिवेदी युग के अंतर्गत लिखी गई थीं। 'आंसू' का आरंभ कवि की विरह-वेदना की अभिव्यक्ति से हुआ है–

इस करुणा कलित हृदय मैं
अब विकल रागिनी बजती
क्यों हाहाकार स्वरों में
वेदना असीम गरजती?'

इसके अंत में यह छन्द दिया गया है–

'सबका निचोड़ लेकर तुम
सुख से सूखे जीवन में
बरसों प्रभात हिमकण-सा
आंसू इस विश्व सदन में।'

सुमित्रनंदन पंत

कवि पंत (1900-1970) छायावाद को प्रतिष्ठित करने वाले प्रारंभिक कवि हैं। कौशांबी में जन्मे पंत को अल्मोड़ा की प्राकृतिक सुषमा ने बचपन से ही आकृष्ट किया। इनके मन में प्रकृति के प्रति इतना मोह पैदा हो गया था कि यह जीवन के नैसर्गिक व्यापकता और अनेकरूपता में पूर्ण रूप से अशक्त ना हो सके–

'छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले तेरे बाल जाल में
कैसे उलझा दूं लोचन?
छोड़ अभी से इस जग को।'

पंत जी की पहली कविता गिरजे का घंटा सन् 1916 की रचना है। तब से वह निरंतर काव्य साधना में तल्लीन है। उनके आरंभिक काव्य-ग्रंथ है-'उच्छ्वास'(1920),'ग्रन्थि'(1920), 'वीणा' (1927), 'पल्लव' ,(1928),'गुंजन' (1932)। गुंजन को उनका अंतिम छायावादी काव्य संग्रह कहा जा सकता है। इसके बाद के कविता-संकलन पहले प्रगतिवाद चेतना से और फिर अरविंद-दर्शन से प्रभावित है।

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' (1896–1962) छायावाद के सर्मेवाधिक बहुमुखी प्रतिभा के कवि हैं। उनकी कविता के कारण ही छायावाद बहुजीवन की झांकी बन सकी। वे सन् 1916 से 1958 तक निरंतर काव्य–साधना में तल्लीन रहे। उनकी छायावादयुगीन रचनाएँ हैं–'अनामिका' (1923), 'परिमल' (1930), 'गीतिका' (1936), 'तुलसीदास' (1938)। कुछ समय तक उन्होंने 'मतवाला' और 'समन्वय' का संपादन भी किया। निराला की चार लंबी कविताएं छायावाद की श्रेष्ठतम उपलब्धियां हैं। राम की शक्ति पूजा में रामकथा के प्रसंग के द्वारा उन्होंने धर्म और अधर्म के शाश्वत संघर्ष का चित्रण किया है। राम की शक्ति पूजा में राम–रावण युद्ध का वर्णन करते हुए कवि कहता है–

'प्रतिपल–परिवर्तीत–व्यूह,भेद–कौशल–समूह,
राक्षस–विरुद्ध–प्रत्यूह,क्रुद्ध–कपि–विषम हूह,
विचछुरित वह्नि–राजिवनयन–हत–लक्ष्य– बाण,
लोहित–लोचन–रावण–मदमोचन–महीयान।'

महादेवी वर्मा

महादेवी वर्मा (1907–1987) मीरा के बाद हिंदी की सर्वाधिक लोकप्रिय कवियत्री हैं। उन्होंने छायावाद में प्रगीत शैली में कविता की है। वे प्राय: रहस्यवाद की कवियत्री मानी जाती हैं। अज्ञात प्रियतम की विरहानुभूति में उन्होंने वेदना के गीत लिखे हैं। वेदना ही उनके काव्य की विषय वस्तु है। किंतु यह रहस्य भावना मध्यकालीन रहस्य भावना से भिन्न है।

उन्होंने अपनी सूक्ष्म वेदना को कला–रूप दिया है। उन्होंने प्रकृति के अनेक उपकरणों द्वारा अज्ञात प्रियतम के प्रति आत्म निवेदन किया है। इसकी शुरुआत 'निहार' (24 से 28 तक की रचनाओं) से ही हो जाती है–

–'पीड़ का साम्राज्य बस गया
उस दिन दूर क्षितिज के पार
मिटना था निर्वाण जहाँ
नीरव रोदन था पहरेदार।
कैसे कहती हो सपना है
अलि उस मूक मिलन की

बात?
भरे हुए अब तक फूलो
में मेरे आंसू उनके हास।

महादेवी की काव्य रचना-सन् 1924 से 1932 तक हैं। छायावाद-युग इनके काव्य-संग्रह प्रकाशित हुए –'निहार' (1930),'रश्मि',(1932), 'नीरजा' (1935) और, 'सांध्यगीत'(1936),'श्याम'(1940),'निहार', 'रश्मि', 'नीरज' और 'सांध्यगीत' के सभी गीतों का संग्रह हैं।

प्रवृत्तियां-विशेषताएँ

छायावाद युग-आधुनिक हिंदी साहित्य व हिंदी कविता का तृतीय उत्थान युग है, जो काव्य कला और साहित्य की दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। यह दो महायुद्ध के बीच का समय है। विद्वानों का एक वर्ग मानता है कि अंग्रेजी के रोमांटिक कवियों तथा रविंद्र नाथ ठाकुर का प्रभाव द्विवेदी काल की इतिवृत्तात्मकता तथा उपदेशात्मकता कविता की प्रतिक्रिया अंग्रेजों का दमन चक्र, असफल असहयोग आंदोलन, व्यक्ति तथा सामाजिक आध्यात्मिक दर्शन आदि ने छायावादी काव्यधारा को जन्म दिया।

प्रकृति काव्य

छायावाद को प्रकृति काव्य सिद्ध करने वाले भी कई आलोचक हैं उनके मत में छायावाद का प्राण प्रकृति है। वह प्रधानत: प्रकृति काव्य है। प्रकृति का मानवीकरण अर्थात प्रकृति पर मानव व्यक्तित्त्व का आरोप है।

प्रकाशचंद्र गुप्त-'छायावादी काव्य ने प्रकृति के प्रति अनुराग की दीक्षा दी। अनुभूतियों को तीव्रता प्रदान की, कल्पना के द्वार मानो वायु के एक ही प्रबल झोंके से खोल दिए। भारत की प्रकृति का अन्यतम दर्शन पाठक को छायावादी काव्य में मिला।'

छायावादी कवियों की सौंदर्य-भावना ने प्रकृति के विविध दृश्यों को अनेक कोमल-कठोर रूपों में साकार किया है। प्रथम पक्ष के अंतर्गत प्रसाद की 'बीती विभावरी जाग री', निराला की 'संध्या-सुंदरी', पंत की 'नौका-विहार' आदि कविताओं का उल्लेख किया जा सकता है, जबकि 'कामायनी' का प्रलय-वर्णन, निराला की 'बादल-राग' कविता तथा पंत की 'परिवर्तन' जैसी रचनाओं में प्रकृति के कठोर रूपों का चित्रण भी मिलता है। छायावादी काव्य

में अनुभूति और सौंदर्य के स्तर पर प्राय: मानव और प्रकृति के भावों और रूपों का तादात्म्य दिखायी देता है।

नवीन अभिव्यंजना पद्धति

छायावादी काव्य की अभिव्यंजना पद्धति भी नवीनता और ताजगी लिए हुए है। द्विवेदीकालीन खड़ीबोली और छायावादी खड़ीबोली में बहुत अंतर है भाषा का विकास समग्र काव्यचेतना के विकास का ही अंतरंग तत्त्व होता है। द्विवेदीयुगीन काव्य बहिर्मुखी था। इसलिए उसकी भाषा में स्थूलता और वर्णनात्मक अधिक थी। इसके विपरीत छायावादी काव्य में जीवन की सूक्ष्म निभृत स्थितियों को आकार प्राप्त हुआ, इसलिए उसकी शैली में उपचारवक्रता मिलती है, जो मानवीकरण आदि अनेक विशेषताओं के रूप में दिखाई देती है। ब्रजभाषा तथा खड़ीबोली के विवाद के कारण भी छायावादी कवियों में आग्रहपूर्वक खड़ीबोली को अधिक सूक्ष्म, चित्रत्मक और वक्र बनाया। छायावादी अभिव्यंजना निसंदेह अर्थ गांभीर्य के उस उत्कर्ष तक पहुंच जाती है, जिससे आगे जाने की संभावना नहीं रहती है।–

छायावादी कवियों के अभिव्यंजना कौशल को छायावाद की सबसे बड़ी उपलब्धि माना जाता है। अज्ञेय ने इस कौशल को छायावाद के केन्द्रीय मूल्य स्वातंत्रीय का प्रथम साधान माना है।

'झड़ चुके तारक कुसुम जब
रश्मि ओके रजत पल्लव,
संधि में आलोक तम की
क्या नहीं नभ जानता तब,
पार से, अज्ञात वासंती
दिवस रथ चल चुका है।'
–महादेवी वर्मा

अन्योक्तिपद्धति का अवलंबन

चित्रभाषा शैली या प्रतीक पद्धति के अंतर्गत जिस प्रकार वाचक पदों के स्थान पर लक्षण पदों का व्यवहार आता है उसी प्रकार प्रस्तुत के स्थान पर उसकी व्यंजना करने वाले अप्रस्तुत चित्रों का विधान भी। अत: अन्योक्तिपद्धति का अवलंबन भी छायावाद का एक विशेष लक्षण हुआ। इस प्रतिक्रिया का

प्रदर्शन केवल लक्षण और अन्योक्ति के प्राचुर्य के रूप में ही नहीं, कहीं-कहीं उपमा और उत्प्रेक्षा की भरमार के रूप में भी हुआ।

सहृदयता और प्रभावसाम्य

छायावाद बड़ी सहृदयता के साथ प्रभावसाम्य पर ही विशेष लक्ष्य रखकर चला है। कहीं-कहीं तो बाहरी सादृश्य या साधर्म्य अत्यंत अल्प या न रहने पर भी आभ्यंतर प्रभावसाम्य लेकर हम अप्रस्तुतों का सन्निवेश कर दिया जाता है। ऐसे अप्रस्तुत अधिकतर उपलक्षण के रूप में या प्रतीकवत् (सिंबालिक) होते हैं- जैसे सुख, आनंद, प्रफुल्लता, यौवनकाल इत्यादि के स्थान पर उनके द्योतक उषा, प्रभात, मधुकाल, प्रिया के स्थान पर मुकुलय प्रेमी के स्थान पर मधुपय श्वेत या शुभ्र के स्थान पर कुंद, रजत, माधुर्य के स्थान पर मधुय दीप्तिमान या कांतिमान के स्थान पर स्वर्ण, विषाद या अवसाद के स्थान पर अंधकार, अँधेरी रात, संध्या की छाया, पतझड़, मानसिक आकुलता या क्षोभ के स्थान पर झंझा, तूफान, भावतरंग के लिए झंकार, भावप्रवाह के लिए संगीत या मुरली का स्वर इत्यादि, आभ्यंतर प्रभावसाम्य के आधार पर लाक्षणिक और व्यंजनात्मक पद्धति का प्रगल्भ और प्रचुर विकास छायावाद की काव्यशैली की असली विशेषता है।

प्रणयानुभूति की प्रधानता

छायावादी कवियों ने प्रधान रूप से प्रणय की अनुभूति को व्यक्त किया है। उनकी कविताओं में प्रणय से संबद्ध विविध मानसिक अवस्थाओं का-आशा, आकुलता, आवेग, तल्लीनता, निराशा, पीड़ा, अतृप्ति, स्मृति, विषाद आदि का अभिनव एवं मार्मिक चित्रण मिलता है। रीतिकालीन काव्य में शृंगार की अभिव्यक्ति नायक-नायिका आदि के माध्यम से हुई है, किंतु छायावादी कवियों की अनुभूति की अभिव्यक्ति प्रत्यक्ष है। यहां कवि और पाठक की चेतना के बीच अनुभूति के अतिरिक्त किसी अन्य सत्ता की स्थिति नहीं है। स्वानुभूति को इस भांति चित्रित किया गया है कि सामान्य पाठक सहज ही उसमें तल्लीन हो जाता है। स्वानुभूति के संप्रेषण के लिए यह आवश्यक है कि कवि उसे निजी संबंधों और प्रसंगों से मुक्त करके लोकसामान्य अनुभूति के रूप में प्रस्तुत करे। छायावादी कवि की प्रणयानुभूति की अभिव्यक्ति भी इसी लोक-सामान्य स्तर पर हुई है।

छायावादी काव्य के स्वरूप के संबंध में यह सहज ही स्वीकार किया जा सकता है कि उसमें कवि की अनुभूति की प्रधानता है और यह अनुभूति कवि-प्रतिभा द्वारा परिष्कृत हो कर ऐसे सौंदर्यमय रूप में व्यक्त होती है, जो सभी सहृदयों को अपने में सहसा आसक्त कर लेती है। छायावादी काव्य में अनुभूति की इस प्रधानता के कारण ही उसे स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह माना गया है।

गीतात्मक शैली

छायावाद की रचनाएं गीतों के रूप में ही अधिकतर होती हैं। इससे उनमें अन्विति कम दिखाई पड़ती है। जहां यह अन्विति होती है वहीं समूची रचना अन्योक्ती पद्धति पर की जाती है। इस प्रकार साम्यभावना का ही प्राचुर्य हम सर्वत्र पाते हैं।

जैसे–

'दुख दावा से नवअंकुर
पाता जग जीवन का बन,
करुणार्द्र विश्व का गर्जन
बरसाता नवजीवन कण।'

गुंजन

व्यक्तिनिष्ठ एंव कल्पनाप्रधान

द्विवेदीयुगीन काव्य विषयनिष्ठ, वर्णनप्रधान और स्थूल था। इसके विपरीत छायावादी काव्य व्यक्तिनिष्ठ और कल्पनाप्रधान है। प्रसाद, निराला आदि कवियों ने अधिकतर अपनी सुख-दु:खमयी अनुभूति को ही मुखर किया है। जिस प्रकार द्विवेदीयुगीन कविता में अष्टि की व्यापकता और अनेकरूपता को समेटने का प्रयास है, उसी प्रकार छायावादी काव्य में मनोजगत की गहराई को वाणी में संजोने का प्रयत्न किया गया है। मनोजगत का सत्य सूक्ष्म होता है, जिसे सर्जना द्वारा साकार करने के लिए छायावादी कवियों ने उर्वरा कल्पना-शक्ति का उपयोग किया है। कल्पना का उपयोग अनुभूति के विविध पक्षों और प्रसंगों की उद्‌भावना में भी किया गया है और उन्हें व्यक्त करने वाले प्रतीकों तथा बिंबों की सर्जना में भी। इसीलिए छायावादी अभिव्यंजना पद्धति विशिष्ट और सांकेतिक हो गयी है।

खड़ी बोली का सुंदर प्रयोग

छायावाद से पहले तक यह भावना कवियों में कही ना कही जीवित थी कि कविता ब्रज में ही सुंदर हो सकती है, खड़ी बोली में नीरसता है। इस बात को गलत सिद्ध छायावादी कवियों नें किया। खड़ी बोली का सबसे सुंदर रूप में प्रयोग हमें छायावाद में मिलता है। खड़ी बोली में जिस तरह से रस छायावादी कवियों में भरा उससे खड़ी बोली को निरस बोलने वालों की आवाज बन्द हो गई। प्रेम, सौन्दर्य और प्रकृति मूख्य विषय होने के कारण छायावादी कवियों की भाषा चित्रात्मक, लाक्षणिक, बिम्बग्राही बन गई है। अज्ञेय के अनुसार- 'छायावाद के सम्मुख पहला प्रश्न अपने काव्य के अनुकूल भाषा का नई संवेदना, नये मुहावरे का था। इस समस्या का उसने धैर्य और साहस के साथ सामना किया।'

इन कवियों में ब्रज भाषा के माधुरीय के साथ संस्कृत निष्ठ तत्सम शब्दावली का अधिकायिक प्रयोग किया है। निराला की निम्न पंक्तियां छायावाद की सुकोमल भाषा का उत्तम उदाहरण है-

विजन वल वल्ली पर
सोती थी सुहाग भरी, स्नेह स्वप्न मग्न
अमल कोमल तनु तरुणी, जुही की कली

नारी के प्रति दृष्टिकोण

छायावादी कवियों ने प्रकृति के सौन्दर्य को महत्व दे कर स्त्रियों पर से सौन्दर्य का भार कम किया, जो भार रीतिकाल के कवियों ने उन पर लाद दिया था, किन्तु इन कवियों नें स्त्रियों को सामान्य पद से उठा कर ईश्वर की भूमि पर बिठा दिया। जहाँ से अब बेलोग अपने दु:ख, व्यथा को समान रूप में व्यक्त नहीं कर सकती थी। हम कह सकते हैं कि एक ओर उनके ऊपर से इन कवियों ने एक भार कम किया पर उन्हें एक दूसरे भार तले दबा दिया। पंत नें स्त्री को 'देवी माँ सहचरी प्राण' कहा तो प्रसाद कहते हैं:-

नारी तुम केवल श्रद्धा हो
विश्वास रजत नग पग तल में
पियुष स्त्रोत सी बहा करो
जीवन के सुंदर समतल में

छायावाद में महादेवी वर्मा ही एक कवयित्री थी जिन्होनें स्त्रियों की वेदना को सही रूप में अंकन किया बाकियों ने उनको ईश्वर बना कर उनके कई हक को सीमित कर दिया था।

छायावाद युगीन अन्य काव्यधाराएँ

हास्य-व्यंग्यात्मक काव्य

छायावाद-युग में हास्य-व्यंग्यात्मक काव्य की भी प्रभूत परिमाण में रचना की गयी-एक ओर तो। ईश्वरीप्रसाद शर्मा, हरिशंकर शर्मा, उग्र, बेढब बनारसी प्रभृती कुछ कवियों ने इस काव्यधारा का प्रमुख रूप में अवलंबन लिया और दूसरी ओर ऐसे कवियों की संख्या भी कम नहीं है, जिन्होंने समानत: अन्य विषयों पर काव्य-रचना करने पर भी प्रसंगवश हास्य-व्यंग्य को स्थान दिया है। 'मनोरंजन ' के संपादक ईश्वरीप्रसाद शर्मा इस युग के प्रथम उल्लेखनीय व्यंग्यकार हैं। ' मतवाला ' ' गोलमाल ', ' भूत ', ' मौजी ', ' मनोरंजन ' आदि पत्रिकाओं में इनकी अनेक हास्यरसात्मक कविताओं का प्रकाशन हुआ था। हरीशंकर शर्मा इस काव्यधारा के अन्य वरिष्ठ कवि। यद्यपि छायावाद-युग में उनका कोई कविता-संकलन प्रकाशित नहीं हुआ, किन्तु 'पींजपोल' और 'चिड़ियाघर' शीषर्क गध-रचनाओं में कुछ हास्य-व्यंग्यात्मक कविताओं और पैरोडियों का इन्होंने कही-कही समावेश किया है।

छायावाद-युग के व्यंगकारों में पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' (1900-1967)का अलग ही स्थान हैं। इनकी व्यंग्य कविताओं और पैरोडियों में जो ताजगी और निर्भीकता मिलती है, वह आज भी उतना ही प्रभावित करती है। इसी कोटि के एक अन्य प्रसिद्ध हास्य-व्यंग्यकार थे-कृष्णदेवप्रसाद गौड़ 'बेढब बनारसी' (1895-1968)। छायावाद-युग में ही नहीं, उसके बाद भी समसामयिक सामाजिक-धार्मिक आचार-व्यवहार को ले कर इन्होंने व्यंग्य-विनोद की जो धारा प्रवाहित की, वह अपनी व्यावहारिक भाषा-शैली के कारण और भी अधिक उल्लेखनीय है। हास्य की छटा बिखेरने के लिए इन्होंने अंग्रेजी और उर्दू की शब्दावली का भी खुल कर प्रयोग किया है। उपमा और वक्रोक्ति के प्रयोग द्वारा व्यंग्य को तीखा बनाने में भी ये सिद्धहस्त थे। इनकी काव्य-शैली का एक उदाहरण देखिए –

–

बाद मरने के मेरे कब्र पर आलू बोना
हश्र तक यह मेरे ब्रेकफास्ट के सामां होंगे,
उम्र सारी तो कटी घिसते कलम ए बेढब
आखिरी वक्त में क्या खाक पहलवां होंगे। '

आलोच्य युग में हास्य-व्यंग्य को प्रमुखता देने वाले अन्य समर्थ कवि हैं-अन्नपूर्णानंद (महाकवि चच्चा), कान्तानाथ पांडेय ' चोंच ' और शिवरत्न शुक्ल। अन्नपूर्णानंद ने पश्चिम के अंधानुकरण, सामाजिक रूढियों की दासता, मानव-स्वार्थ आदि विषयों पर उत्कृष्ट व्यंग्य-काव्य स्चना की है। कान्तानाथ पांडेय ' चोंच ' की कृतियों में ' चोंच-चालीसा ', ' पानी पांडे ' और महकावि सांड़ ' उल्लेखनीय हैं, जिनमें से अंतिम दो में इनकी कुछ हास्य-रसात्मक कहानियां भी समाविष्ट हैं।

===ब्रजभाषा-काव्य===

आधुनिक युग को ब्रजभाषा-काव्य की एक दीर्घ-समुन्नत परंपरा प्राप्त हुई थी, इसलिए आधुनिक युग के आरंभिक कवियों के लिए यह स्वाभाविक था कि वे उस परंपरा से प्रभावित हों-प्रभावित ही न हों, उसे आगे भी बढ़ायें। भारतेंदु हरिश्चंद्र और ब्रजभाषा के परवर्ती कवियों की रचनाएं प्राचीन परंपरा से प्रभावित होते हुए भी नवीनता की ओर-नये विषयों और नयी अभिव्यंजना पद्धति की ओर अग्रसर हुईं। किंतु छायावाद-युग में ब्रजभाषा-काव्य की परंपरा एक गौण धारा के रूप में ही दिखायी देती है। इसका प्रमुख कारण यह है कि आधुनिक काल में गद्य-रचना की भांति काव्य-रचना के लिए भी खड़ीबोली को स्वीकार कर लिया गया। फिर भी काव्य की भाषा को ले कर काफी दिनों तक तीव्र विवाद होता रहा। ब्रजभाषा के समर्थन में यह तर्क दिया जाता था कि यदि हम सूर, तुलसी, सेनापति, बिहारी और घनानंद जैसी समर्थ प्रतिभाओं की परंपरा को भूलना नहीं चाहते तो हमें ब्रजभाषा को साहित्य में जीवित रखना होगा और इसका उपाय यह है कि काव्य में ब्रजभाषा को ही स्वीकार किया जाये। साथ ही यह भी कहा जाता था कि ब्रजभाषा को अनेक महान प्रतिभाओं ने संवार कर काव्य के उत्तम माध्यम के रूप में ढाल दिया है, जबकि खड़ीबोली का रूप अव्यवस्थित, कर्कश और खुरदरा है और वह काव्य-भाषा के गुणों से रहित है। इसलिए कवियों और विद्वानों के एक वर्ग ने ब्रजभाषा का जोरदार समर्थन किया। बाद में जब प्रसाद,निराला,आदि छायावादी कवियो ने खड़ीबोली-कविता में भी अनुभूतियो की मार्मिक अभिव्यक्ति कर उसकी अतरंग शक्ति को प्रत्यक्ष कर दिखाया, तब खड़ीबोली-कविता का विरोध शांत हो गया। इसके बावजूद अनेक कवि ब्रजभाषा में काव्य रचना करते रहे। इसके बावजूद अनेक कवि ब्रजभाषा में काव्य रचना करते रहे। इनमें रामनाथ जोतिसी (1874), रामचंद्र शुक्ल (1884-1940), राय कृष्णदास (1892-1980), जगदंबाप्रसाद मिश्र ' हितैषी

' (1895–195611 दलारेलाल भार्गव (1995), वियोगी हरि (1896–1988), बालकृष्ण शर्मा ' नवीन ', अनूप शर्मा (1900–1966), रामेश्वर ' करुण ' (1901) . किशोरीदास वाजपेयी, उमाशंकर वाजपेयी ' उमेश (1907–1957) आदि का उल्लेख मुख्य रूप से अपेक्षित है। रामनाथ जोतिसी की रचनाओं में 'रामचंद्रोदय काव्य' (1936) मुख्य हैं। बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने ब्रजभाषा में अनेक स्फूट रचनाएँ लिखी हैं।,किन्तु इनके कृतित्त्व का वेशिष्टय 'उर्मिला' महाकाव्य के पंचम सर्ग में लक्षित होता है इसमें विरहिणी नायिका की मनोदशाओ का मर्मस्पर्शी चित्रण हुआ है यथा–

<poem>–'वे स्वपिनल रतिया मधुर, वे बतिया चुपचाप।
हवै विलीन हिय में बनी आज विछोह विलाप।।
साजन संस्मृति नेह की, खटकि खटकि रहि
जाए।।
अटकि अटकि आंसू झरे,भरे हृदय निरुपाय।।

छायावाद–युग में ब्रजभाषा काव्य के उन्नयन में अनूप शर्मा का योगदान अविस्मरणीय है। चम्पू–काव्य ' फेरि मिलिबौ ' (1938) में कुरुक्षेत्र में राधा–कृष्ण के पुनर्मिलन का वर्णन है, श्रीमद्भागवत पुराण ' के संबद्ध प्रसंग पर आधारित है। इसका कथानक 75 प्रसंगों में विभाजित है तथा गद्य और पद्य दोनों में ब्रजभाषा को अपनाया गया है। कथा–प्रवाह, रस–व्यंजना, चरित्र–चित्रण की स्वाभाविकता और भाषा की सहज मधुरता इस कृति की सहज विशेषताएं हैं।

गद्य–साहित्य

छायावादयुगीन गद्य–साहित्य के अध्ययन –अनुशीलन के पूर्व इस युग की राजनीतिक, सामाजिक और साहित्यिक पृष्ठभूमि का संक्षिप्त सर्वेक्षण आवश्यक है, क्योंकि युगविशेष का साहित्य जहां पवर्ती साहित्य से जुड़ा होता है, वही समसामयिक वातावरण और रचना–प्रवृत्तियों का भी उस पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। राजनीतिक दृष्टि से इस युग में महात्मा गांधी का नेतृत्व जनता को सत्य, अहिंसा और असहयोग के माध्यम से स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए निरंतर प्रेरणा एवं शक्ति प्रदान कर रहा था। 1919 ई . के प्रथम अवज्ञा आंदोलन की असफलता, जलियांवाला कांड तथा भगतसिंह को प्रदत्त मृत्युदंड जैसी घटनाओं से जनता का मनोबल कम नहीं हुआ था, साइमन कमीशन के बहिष्कार तथा नमक–कानून–भंग सदृश जन–आंदोलनों से इसी तथ्य की पुष्टि होती है। पश्चिमी सभ्यता तथा

संस्कृति के प्रभावस्वरूप इस युग के सामाजिक जीवन में भी परिवर्तन आ गया था। युवा मन परंपरागत रीति-रिवाजों को तोड़ कर पश्चिमी राष्ट्रों के स्वतंत्र नागरिकों के समान जीवन-यापन के लिए लालायित था। सामाजिक-राजनीतिक परिवर्तनों की जैसी स्पष्ट छाप छायावाद-युग के गद्य-साहित्य में लक्षित होती है, वैसी काव्य-साहित्य में नहीं होती। वस्तुतः आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा से हिंदी-गद्य का व्याकरण सम्मत परिमार्जित रूप प्रायः स्थिर हो चुका था, फलस्वरूप समकालीन परिवेश के संदर्भ में विभिन्न गद्यविधाओं का यथार्थोन्मुख विकास-परिष्कार स्वाभाविक था। इसलिए छायावाद-युग का गद्य-साहित्य पूर्ववर्ती युगों की तुलना में अधिक विकासशील और समृद्ध है।।

नाटक

नामकरण की दृष्टि से विचार करें तो हिंदी-नाट्यसाहित्य के इस युग को 'प्रसाद-युग' कहना युक्तिसंगत होगा। यद्यपि प्रसाद जी ने सन् 1918 के पूर्व ही नाटकों की रचना आरंभ की पर उनकी आरंभिक रचनाएं–सज्जन, कल्याणी-परिणय, प्रायश्चित, करुणालय, राज्यश्री आदि नाट्यकला की दृष्टि से अपरिपक्व हैं। इनके अध्ययन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि वे अपने माध्यम की खोज कर रहे थे। यह माध्यम उन्हें आलोच्य युग में प्राप्त हुआ-विशाख (1921), अजातशत्रु (1922), कामना (रचना 1923-24, प्रकाशन 1927), जनमेजय का नागयज्ञ (1926), स्कंदगुप्त (1928), एक चूंट (1930), चंद्रगुप्त (1931) और ध्रुवस्वामिनी (1933) शीर्षक नाट्यकृतियों के रूप में। इनके माध्यम से उन्होंने हिंदी-नाट्यसाहित्य को विशिष्ट स्तर और गरिमा प्रदान की। वस्तुतः हिंदी-उपन्यास और कहानी के क्षेत्र में जो स्थान प्रेमचंद का है, नाटक के क्षेत्र में लगभग वही स्थान प्रसाद का है।

एकांकी नाटक

हिंदी में एकांकी नाटकों का प्रचलन विशेष रूप से विवेच्यकाल के अंतिम कुछ वर्षों में ही हुआ, यों आरंभ से ही एकांकी लिखने के छटपुट प्रयास होने लगे थे। उदाहरणस्वरूप, महेशचंद्र प्रसाद के 'भारतेश्वर का संदेश' (1918) शीर्षक पद्यबद्ध एकांकी, देवीप्रसाद गुप्त के 'उपाधि और व्याधि' (1921) तथा रूपनारायण पांडेय द्वारा अमूल्यचरण नाग के बंगला-नाटक 'प्रायश्चित' के

आधार पर लिखित 'प्रायश्चित प्रहसन' (1923) का उल्लेख किया जा सकता है। ब्रिजलाल शास्त्री–कृत 'वीरांगना' (1923) में 'पद्मिनी', 'तीन क्षत्रणियां', 'पन्ना', 'तारा ', 'कमल ' 'पद्मा ', 'कोड़मदेवी', 'किरणदेव' प्रभृति एकांकी संगृहित हैं। बदरीनाथ भट्ट के एकांकी–संग्रह 'लबड़ धो धों' (1926) में मनोरंजक प्रहसन संकलित हैं। हनुमान शर्मा–कृत 'मान–विजय' (1926), बेचन शर्मा 'उग्र' के एकांकी–प्रहसनों का संग्रह 'चार बेचारे' (1929) और प्रसाद का ' एक घूंट ' (1930) भी इस काल की उल्लेखनीय रचनाएं हैं। उग्र जी ने समसामयिक परिस्थितियों का व्यंग्यपूर्ण शैली में निर्मम विश्लेषण प्रस्तुत किया है। इस विवरण से यह स्पष्ट है कि एकांकी–रूप में नाटकों की रचना बहुत पहले होने लगी थी। सच पूछे तो यह विधा हमारे लिए बिलकुल नयी नहीं थी।

उपन्यास

हिंदी उपन्यास साहित्य के संदर्भ में आलोच्य युग को 'प्रेमचंद युग' की संज्ञा लगभग निर्विवाद रूप में मिल चुकी है क्योंकि 'सेवासदन' (1918) का प्रकाशन न केवल प्रेमचंद (1880–1936) के साहित्यिक जीवन की अपितु हिंदी उपन्यास की भी एक महत्वपूर्ण घटना थी 'सेवासदन' पूर्ववर्ती कथा साहित्य का अभूतपूर्व विकास था इससे पहले कथा साहित्य में या तो अजीबोगरीब घटनाओं के द्वारा कुतुहल और चमत्कार के सृष्टि रहती थी अथवा आर्य समाज और तत्समान अन्य सामाजिक आंदोलन से प्रभावित समाज–सुधारों का प्रचार ही उसकी उपलब्धि रह गई थी। 'सेवासदन' के बाद प्रेमचंद के 'प्रेमाश्रम' (1922) . 'रंगभूमि' (1925), 'कायाकल्प' (1926), 'निर्मला' (1927), 'गबन' (1931), 'कर्मभूमि' (1933) और 'गोदान' (1935 शीर्षक सात मौलिक उपन्यास प्रकाशित हुए। इस बीच उन्होंने अपने दो पुराने उर्दू उपन्यासों को भी हिंदी में रूपांतरित और परिष्कृत करके प्रकाशित किया। 'जलवए ईसार' का रूपांतर 'वरदान' 1921 में प्रकाशित हुआ तथा 'हमखुर्मा व हमसवाब' के पूर्व प्रकाशित हिंदी–रूपांतर 'प्रेमा अर्थात दो सखियों का विवाह' को परिषकृत कर उन्होंने 'प्रतिज्ञा' (1929) शीर्षक से उसे सर्वथा नये रूप में प्रकाशित कराया। एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि आरंभ में प्रेमचंद अपने उपन्यास पहले उर्दू में लिखते थे और फिर स्वयं उनका हिंदी–रूपांतर करते थे। 'सेवासदन', 'प्रेमाश्रम' और 'रंगभूमि' क्रमशः 'बाजारे–हुस्न', 'गोशए–आफियत' और 'चौगाने–हस्ती' नाम से उर्दू में लिखे गये थे, किंतु प्रकाशित पहले ये हिंदी

में ही हुए। वैसे, मूल रूप से हिंदी में लिखित उनका पहला उपन्यास 'कायाकल्प' है। इसके बाद उन्होंने सभी उपन्यासों की रचना हिंदी में ही की, उर्दू की बैसाखी की जरूरत उन्हें अब नहीं रह गयी थी।

कहानी

हिंदी कहानी का प्रकार और परिमाण दोनों ही दृष्टियों से वास्तविक विकास विवेच्य काल में ही हुआ, यह एक निर्विवाद तथ्य है। जिस प्रकार प्रेमचंद इस काल के उपन्यास-साहित्य के एकछत्र सम्राट् बने रहे, उसी प्रकार कहानी के क्षेत्र में भी उनका स्थान अद्वितीय रहा। इस अवधि में उन्होंने लगभग दो सौ कहानियां लिखीं। उनके कहानी-लेखन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि स्वयं उनकी ही कहानियों में हिंदी कहानी के विकास की प्रायः सभी अवस्थाएं दृष्टिगोचर हो जाती हैं। उनकी आरंभिक कहानियों में किस्सागोई, आदर्शवाद और सोद्देश्यता की मात्रा अधिक है। यद्यपि व्यावहारिक मनोविज्ञान का पुट दे कर मानवचरित्र के सूक्ष्म उद्घाटन की क्षमता के फलस्वरूप प्रेमचंद ने अपनी कहानियों को विशिष्ट बना दिया है। पर उनकी आरंभिक कहानियों का कच्चापन और यथार्थ की उनकी कमजोर पकड़ अत्यंत स्पष्ट है। इन कहानियों में हम एक अत्यंत प्रबुद्ध कलाकार को कहानी के सही ढांचे या शिल्प की तलाश में संघर्षरत पाते हैं। 'बलिदान' (1918), 'आत्माराम' (1920), 'बूढ़ी काकी' (1921), 'विचित्र होली' (1921), 'गृहदाह' (1922), 'हार की जीत' (1922), 'परीक्षा' (1923), 'आपबीती' (1923), 'उद्धार' (1924), 'सवा सेर गेहूं' (1924), 'शतरंज के खिलाड़ी' (1925), 'माता का हृदय' (1925), 'कजाकी' (1926), 'सुजान भगत' (1927), 'इस्तीफा' (1928), 'अलग्योझा' (1929), 'पूस की रात' (1930), 'तावान' (1931), 'होली का उपहार' (1931), 'ठाकुर का कुआँ' (1932), 'कफन' (1936) आदि कहानियो में इस तलाश की रेखायें स्पष्ट देखी जा सकती हैं।

इस काल के दूसरे प्रमुख कहानीकार जयशंकर प्रसाद। यद्पि उनकी पहली कहानी ' ग्राम ' सन् 1911 में ही 'इंदु' में छप चुकी थी, तथापि उनके महत्त्वपूर्ण कहानी-संग्रह 'प्रतिध्वनि (1926)', 'आकाशदीप' (1929), 'आंधी' (1931), 'इंद्रजाल' (1936) आदि विवेच्य काल से ही प्रकाश में आये। कहानी-लेखक के रूप में उनकी प्रकृति प्रेमचंद से बिलकुल अलग है। जहां प्रेमचंद का रुझान जीवन के चारों ओर फैले यथार्थ में था, वहीं प्रसाद रूमानी

स्वभाव के व्यक्ति थे। उनकी कहानियों में जीवन के सामान्य यथार्थ को कम और स्वर्णिम अतीत के गौरव, मसृण भावुकता, कल्पना की ऊंची उड़ान तथा काव्यात्मक चित्रण को अधिक महत्त्व मिला है। उनकी कुछ कहानियां तो आधुनिक कहानी की तुलना में संस्कृत–गद्यकाव्य के निकट हैं।

राष्ट्रीय- सांस्कृतिक काव्यधाराएँ

हिंदी साहित्य में छायावाद का प्रवर्तन द्विवेदी युग के अवसान के साथ-साथ हो गया था। छायावादी काव्य प्रवृत्ति के कुछ सूत्र दो-तीन कवियों की रचनाओं में देखे जा सकते हैं, उनका उल्लेख हमने छायावाद शीर्षक प्रकरण में किया है। छायावाद युग के समकालीन कुछ ऐसे कवि हैं जिन्होंने विभिन्न विषयों की मुक्तक रचनाएँ प्रस्तुत कर अपनी पहचान छायावाद से पृथक् बनायी। काल की दृष्टि से उनका समय अवश्य छायावाद की सीमा में आता है। भाव और अभिव्यंजना शिल्प की दृष्टि से उन्हें छायावादी कवि नहीं कहा जा सकता। इन कवियों की रचनाओं में राष्ट्रीय सांस्कृतिक धारा को प्रमुख स्थान मिला है। उसका एक विशेष कारण है। सन् 1922 से 32 तक का समय अहिंसात्मक आंदोलन की दृष्टि से राष्ट्रीय जागरण का काल था। ब्रिटिश शासन की दासता से मुक्ति पाने के लिए अखिल भारतीय कांग्रेस महात्मा गाँधी के नेतृत्व में एक देशव्यापी आन्दोलन चला रही थी और उसका प्रमाभ देश की सभी भाषाओं के रचनाकारों पर पड़ रहा था। हिन्दी में भी उस समय ऐसे अनेक कवि उत्पन्न हुए जिन्होंने राजनीति तथा भारतीय संस्कृति को केन्द्र में रखकर अपनी रचनाएँ प्रस्तुत कीं। राजनीतिक जन जागरण के क्षेत्र में इन कवियों का योगदान सदैव स्मरण किया जायेगा। द्विवेदी युग के कवियों की चर्चा में हमने ऐसे कई कवियों के नाम संकेतित किये हैं जिन्होंने छायावाद युग में रहते हुए भी युगधर्म के साथ विशिष्ट आन्दोलनों को ध्यान में रखकर, देशभक्तिपूर्ण कविताएँ लिखीं।

उनमे प्रमुख हैं– माखनलाल चतुर्वेदी, सियारामशरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा नविन, सुभद्राकुमारी चौहान, जगन्नाथ प्रसाद मिलिंद, रामधारी सिंह दिनकर, उदयशंकर भट आदि।

माखनलाल चतुर्वेदी (1889-1968)– श्री चतुर्वेदी का जन्म 1889 ई. में मध्यप्रदेश के होशंगाबाद के गांव बावई में हुआ था। इनके पिता अध्यापक थे और इनकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँव में हुई। शैशव से ही कविता के प्रति इनका लगाव था। वैष्णव संस्कार वाले परिवार में पूजा-पाठ आदि का प्रचलन था

इसलिए चतुर्वेदीजी भी प्रेमसागर जैसी पुस्तकें बचपन से ही पढ़ने लगे थे। युवा होने पर एक स्कूल में अध्यापक हो गये किन्तु स्वतन्त्रचेता कवि होने के कारण उनका स्कूल की अध्यापकी में नहीं लगा और त्यागपत्र देकर पत्रकारिता के क्षेत्र गये। पहले प्रभा नामक एक मासिक पत्र के सम्पादकीय विभाग में काम उसके बाद प्रताप तथा कर्मवीर में लम्बे अरसे तक सम्पादन कार्य से सम्बटर इन्होंने अपना उपनाम ' एक भारतीय आत्मा ' रखा जो कि उपनाम की परम्परा से कुछ हटकर था। उनकी लोकप्रिय कविता है पुष्प की अभिलाषा–

–'चाह नहीं, मैं सुरबाला के गहनों में गूंथा जाऊं,
चाह नहीं, प्रेमी माला में बिंध प्यारी को ललचाऊँ,
चाह नहीं, सम्राटों के शव पर हे हरि, डाला जाऊं,
चाह नहीं, देवों के सिर पर चढूँ, भाग्य पर इठलाऊं
मुझे तोड़ लेना बनमाली, उस पथ में देना तुम फेंक
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जावें वीर अनेक।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' (1887-1960)– नवीन का जन्म 1897 ई . में ग्वालियर राज्य के भयाना गाँव में हुआ था। हाईस्कूल की परीक्षा पास करने के बाद ये गणेशशंकर विद्यार्थी के पास गये और उन्होंने इनको कॉलेज में दाखिल करा दिया। सन् 1921 के गाँधीजी के आह्वान पर कॉलेज छोड़कर राजनीति में सक्रिय भाग लेने लगे। विद्यार्थीजी के पत्र 'प्रताप ' में सह-सम्पादक का कार्य भी किया और छात्र-जीवन से ही राजनीतिक विषयों पर लेख, कविता आदि लिखना प्रारम्भ किया। लम्बे समय तक राजनीतिक आन्दोलनों में भाग लेने के कारण इन्हें कई बार जेल जाना पड़ा। वहाँ भी उन्होंने अपना काव्य-प्रेम अक्षुण्ण रखा और फुटकर कविताएँ लिखते रहे। इनका पहला कविता संग्रह कुंकुम 1935 में प्रकाशित हुआ। इन्होंने एक उर्मिला शीर्षक काव्य भी लिखा था जो बहुत वर्षों तक तक अप्रकाशित पड़ा रहा। इस काव्य में उन्होंने युगानुरूप कुछ सन्दर्भ जोड़ने का प्रयास किया है। उर्मिला के चरित्र के माध्यम से भारत की प्राचीन संस्कृति को नवीन परिवेश में प्रस्तुत करने का उनका प्रयास स्तुत्य है। उनकी रचनाओं में प्रणय और राष्ट्र प्रेम दोनों भावों की अभिव्यक्ति हुई है। उनके अन्य प्रमुख ग्रंथों के नाम हैं अपलक, रश्मि रेखा, हम विषपायी जन्मके आदि।

जयशंकर भट्ट(1898-1961)–उदयशंकर भट्ट (1898-1961)–श्री उदयभट्ट का जन्म उत्तर प्रदेश के बुलन्दशहर जिले के कर्णवास गाँव में सन् 1898 ई . को हुआ था। छायावादी कविता के उत्कर्ष काल में भट्टजी ने कविता

के क्षेत्र में पदार्पण किया। उनका प्रारम्भिक रचनाओं में छायावादी काव्य शिल्प और भाव का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। राका, मानसी, विसर्जन, युगदीप, अमृत और विष आदि कविता संग्रहों में इनकी वैयक्तिक अनुभति की सूक्ष्मता, प्रकृति के मानवीकरण की योजना, अभिव्यक्ति के लिए लक्षणा और व्यंजना का सार्थक प्रयोग भट्टजी के काव्य की विशेषता है। भाव नाट्य के क्षेत्र में भी भट्टजी की रचना विश्वामित्र और दो भाव नाट्य उच्च कोटि की रचनाएँ हैं। भट्टजी के परिवार की भाषा गुजराती थी। उनकी जन्मस्थली ब्रजमण्डल में होने के कारण इन पर ब्रजी का भी प्रभाव था। संस्कृत के अध्येता और अध्यापक होने के कारण उनकी रचनाओं में तत्सम पदावली का लावण्य और माधुर्य पाया जाता है। इनका निधन 1961 ई . में दिल्ली में हुआ।

रामधारी सिंह दिनकर(1908 से 1974)– रामधारी सिंह दिनकर का जन्म 1908 ई. में बिहार के सिमरिया गांव जिला में हुआ। बी.ए. तक शिक्षा प्राप्त करने के बाद में इन्हें पारिवारिक परिस्थितियों के कारण सरकारी नौकरी करनी पड़ी। सीतामढ़ी में सब-रजिस्ट्रार के पद पर लम्बे अरसे तक कार्य किया। भारत के स्वतन्त्र होने पर बारह वर्ष तक संसद-सदस्य (राज्य-सभा) रहे। एक वर्ष तक भागलपुर विश्वविद्यालय के कुलपति पद पर कार्य करने के बाद भारत सरकार के हिन्दी सलाहकार के रूप में छह वर्ष तक कार्य करते रहे। मूलत: दिनकर कवि थे किन्तु गद्य के क्षेत्र में भी इन्होंने इतिहास, निबन्ध, समीक्षा आदि पर पुस्तकें लिखीं। छायावादोत्तर कवियों में, जिन्हें हमने छायावादी समकालीन कवि कहा है, दिनकर का स्थान मूर्धन्य पर है। उन्होंने स्वयं लिखा है कि मैं छायावाद की ठीक पीठ पर आये कवियों में हूँ। छायावाद की व्यंजनात्मक उपलब्धियों को स्वीकार करते हुए उन्होंने भाव और विचार के क्षेत्र में अपनी नयी भूमिका प्रस्तुत की। राष्ट्रीय चेतना के उद्बोधक गीत लिखकर जो ख्याति चौथे दशक में दिनकर को प्राप्त हुई वैसी किसी अन्य कवि को नहीं मिली। 'मेरे नगपति मेरे विशाल हिमालय को सम्बोधित उनकी प्रसिद्ध कविता है।' दिनकर के काव्य में जीवन और समाज का तात्कालिक परिवेश देखा जा सकता है। यह ठीक है कि राष्ट्रीय और सांस्कृतिक विषयों में गहरी रुचि होने के साथ ही वे छायावादी भंगिमा को छोड़ नहीं सके थे। उन्होंने बड़ी कुशलता से छायावादी काव्यधारा के अभिव्यंजना पक्ष को सरलीकृत रूप में प्रस्तुत कर, अपनी पृथक् पहचान बनायी राष्ट्रीय कविताओं के प्रति उनका प्रेम जिन परिस्थितियों में संवेदना के मार्मिक संस्पर्श से उद्वेलित हुआ था उसका एक विशेष कारण था।

प्रेम और मस्ती का काव्य

प्रस्तुत काल के काव्य में छायावादी रचनाएं इतनी प्रौढ़ और शक्तिशाली है कि प्राय: इस काल का विवेचन करते हुए आलोचकों का ध्यान केवल छायावादी काव्य धारा में ही केंद्रित होकर रह जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि इस काल के कवि जो पूरी तरह से छायावाद के अंतर्गत नहीं आ पाते, उपेक्षित से हो जाते हैं। बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', भगवतीचरण वर्मा, बच्चन, नरेन्द्र शर्मा, अंचल आदि की प्रणयमूलक वैयक्तिक कविताओं का अध्ययन इसी सन्दर्भ में अपेक्षित हैं और यौवन की प्रखरता तथा आवेश को व्यक्त करने वाली इनकी अधिकांश काल में प्रकाशित हुई। तथापि इस दिशा में इनका आरम्भिक कृतित्त्व छायावाद युग में ही प्रकाश में आया– फलस्वरूप आलोच्य युग की इस काव्यधारा पर यहां संक्षेप में विचार कर लेना युक्तियुक्त होगा। बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य की रचना की है, किन्त उनकी सम्बन्धी रचनाएं भी महत्वपूर्ण है। यह कहा जा सकता है कि प्रणय और योवन कर छायावादी काव्य में बड़ी तल्लीनता के साथ किया गया है, इसलिए इन कविनों को स्वतन्त्रमा रूप से प्रेम और मस्ती की काव्यधारा के अन्तर्गत रखने का क्या आधार हैं? उत्तर स्पष्ट है य छायावादी कवियो में प्रणय का महत्त्व सीमित है। इस दृष्टि से प्रसाद का 'आंसू' काव्य छायावादी प्रणय-भावना के दोनों रूपों को मांसल वासनात्मक रूप को और उदात्त करुणा के रूप को व्यक्त करता है। 'कामायनी' में श्रद्धा, जो कामगोत्रजा है और प्रेम का संदेश सुनाने के लिए अवतरित हुई है, एक सीमा तक ही लौकिक प्राणी की आलंबन रहती है और अंत में उसी की रागात्मिका वृति का संमबल पाकर मनु आनंद-आनंद लोक तक पहुंचते है। निराला के 'तुलसीदास' में भी प्रणय के इस सामान्य लौकिक रूप का निषेध कर राग बोध को एक उदास आध्यात्मिक और सांस्कृतिक स्तर पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास है।

10

आधुनिककालीन हिंदी साहित्य का इतिहास– प्रगतिवाद

1936 ई. के बाद हिंदी साहित्य में सामाजिक चेतना को केंद्र में रखने वाली जिस नई काव्यधारा का उदय हुआ उसे प्रगतिवाद कहते हैं। इसे मार्क्सवादी विचारधारा का साहित्यिक रूपांतरण भी माना जाता है। मार्क्सवाद समाज को शोषक और शोषित दो वर्ग में विभाजित मानती है। यह बुद्धिजीवियों से शोषक वर्ग के खिलाफ शोषित वर्ग में चेतना जगाने की उम्मीद करती है। यह शोषित वर्ग को संगठित कर शोषण मुक्त समाज की स्थापना की कोशिशों का समर्थन करती है। यह पूँजीवाद, सामंतवाद, धार्मिक संस्थाओं आदि को शोषक के रूप में चिन्हित कर उन्हें उखाड़ फेंकने की बात करती है। प्रगतिवादी साहित्य में ये सभी स्वर स्पष्ट रूप से पहचाने जा सकते हैं। प्रगतिवादी धारा के साहित्यकारों में नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, शिवमंगल सिंह सुमन त्रिलोचन, रांगेय राघव आदि प्रमुख हैं। बाद में गिरिजाकुमार माथुर, भारतभूषण अग्रवाल, गोपालदास नीरज, रामविलास शर्मा आदि कवि भी इस धारा से जुड़े। इस काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं–

परिस्थितियां

इस काव्यधारा के उद्‌भव और विकास में अंतरराष्ट्रीय परिस्थितियां जैसे रूसी क्रांति के बाद हुई सोवियत संघ की स्थापना और वैश्विक स्तर पर

प्रगतिशील लेखक संघों का निर्माण आदि भी सहायक हुई। 1936 का समय भारत में सविनय अवज्ञा आंदोलन के पश्चात उभरती हुई निराशा और विकलता का था इस समय तक मार्क्सवादी दर्शन के आधार पर साम्यवाद की स्थापना कर सोवियत संघ सामंतवाद और पूंजीवाद की विभीषिकाओं को कुचल कर अत्यंत शक्तिशाली राष्ट्र बन चुका था। रूस में सर्वहारा जनों के जीवन का उत्थान और साम्यवाद का पश्चिम के अन्य देशों में फैलाव भारतीय बुद्धिजीवियों के लिए प्रेरणा स्रोत बन रहा था। भारत में एक तरफ जहाँ किसान और मजदूर आंदोलन तेज हुए वहीं कांग्रेस के भीतर भी 1934 में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का जन्म हुआ। सन् 1935 में ई. एम. फार्स्टर के सभापतित्त्व में पेरिस में 'प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसिएशन' नामक अंतरराष्ट्रीय संस्था का प्रथम अधिवेशन हुआ। सन् 1936 में सज्जाद जहीर और डॉ. मुल्करराज आनंद के प्रयत्नों से भारतवर्ष में भी इस संस्था की शाखा खुली। इसी वर्ष लखनउ में प्रगतिशील लेखक संघ का पहला सम्मेलन हुआ। इसकी अध्यक्षता प्रेमचंद ने की। इसके बाद साहित्य की विभिन्न विधाओं में मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित रचनाएँ हुईं।

नवीन सौंदर्यदृष्टि

प्रगतिवादी विचारधारा सौंदर्य को रूमानी कल्पनाओं के बजाय जीवन से जोड़कर देखती है। वह अपने आस-पास के जनजीवन में सौंदर्य खोजती है। सौंदर्य व्यक्ति के हार्दिक आवेगों और मानसिक चेतना दोनों से संबंधित होता है। ये दोनों सामाजिक संबंधों से नियंत्रित होती हैं। सौंदर्य को परिभाषित करते हुए मार्क्सवादी दार्शनिक एन.जी. चरनीशवस्की के शब्दों में 'मनुष्य को जीवन सबसे प्यारा है, इसीलिए सौंदर्य की यह परिभाषा अत्यंत संतोषजनक मालूम पड़ती है– 'सौंदर्य जीवन है'। इसीलिए प्रगतिवादी साहित्यकार जीवन के हर रूप में तथा उसे बेहतर बनाने के लिए होने वाले संघर्षों में सौंदर्य देखते हैं।

रूढ़ि-विरोधी

प्रगतिवादी साहित्यकारों ने धर्म को रूथ्ढ़ के रूप में स्वीकार किया। उन्होंने ईश्वर को सृष्टि का कर्ता न मानकर जागतिक द्वन्द को सृष्टि के विकास का कारण माना। ईश्वर, आत्मा, परलोक, भाग्यवाद, स्वर्ग, नरक आदि में वह विश्वास नहीं करता है। वह धर्म को अफीम (दर्दनिवारक) मानता है और प्रारब्ध

को एक सुन्दर प्रवंचना। उसके लिए मंदिर, मस्जिद, गीता और कुरान आज महत्व नहीं रखते हैं। एक कवि कहते हैं–

<èpoem>

किसी को आर्य, अनार्य,

किसी को यवन, किसी को हूण –यहूदी–द्रविड किसी को शीश किसी को चरण

मनुज को मनुज न कहना आह !

<èpoem>

क्रांतिधर्मी

प्रगतिवादी कवि क्रांति में विश्वास रखते हैं .वे पूंजीवादी व्यवस्था, रूढ़ियों तथा शोषण के साम्राज्य को समूल नष्ट करने के लिए विद्रोह का स्वर निकालते हैं –

मानवतावादी

ये कवि मानवता की शक्ति में विश्वास रखते हैं। प्रगतिवादी कवि कविताओं के माध्यम से मानवतावादी स्वर बिखेरता है। वह जाति–पाति, वर्ग भेद, अर्थ भेद से मानव को मुक्त करके एक मंच पर देखना चाहते हैं।

स्त्री मुक्ति आकांक्षी

प्रगतिवादी कवियों का विश्वास है कि मजदूर और किसान की तरह साम्राज्यवादी समाज में नारी भी शोषित है वह पुरुष की दास्ताजन्य लौह बंधनों में बंद है। वह आज अपना स्वरूप खोकर वासना पूर्ति का उपकरण रह गयी है। अत: कवि कहता है –

इहलौकिक

प्रगतिवादी कवि इसी दुनिया पर केंद्रित साहित्य लिखते हैं। वे इस दुनिया की समस्याओं का समाधान मृत्यु के बाद मिलने वाले किसी दूसरे लोक में नहीं ढूँढते हैं। वे जीवन के प्रति आशावादी हैं।। वे इसी धरती को ही वे स्वर्ग के रूप में बदलना चाहते हैं। इस धरती से विषमता दूर हो जाए और मानवता का प्रसार हो जाए तो यह धरती ही स्वर्ग बन जायेगी।

भाषा और कला पक्ष

प्रगतिवाद का जनआंदोलन से सीधा संबंध था। इसलिए इससे जुड़े साहित्य की भाषा को जनभाषा होना अनिवार्य था। प्रगतिवादि कवियों ने छायावादी भाषा से भी सरल भाषा में कविता की। इन्होंने अलंकारों को सामंती आलंकारिकता की प्रवृत्ति से जोड़कर देखा। इसीलिए इन्होंने अलंकारों की परवाह नहीं की। अलंकारों के बजाय इन्होंने जनजीवन के लिए सहज उपमानों और प्रतीकों का प्रयोग किया है। इन्होंने छंदों का भी तिरस्कार कर मुक्त छंद में कविताएं लिखी हैं।

11

आधुनिककालीन हिंदी साहित्य का इतिहास-नई कविता

परिभाषा और स्वरूप

नयी कविता 'भारतीय स्वतंत्रता' के बाद लिखी गयी उन कविताओं को कहा गया, जिनमें परंपरागत कविता से आगे नये भावबोधों की अभिव्यक्ति के साथ ही नये मूल्यों और नये शिल्प-विधानों का अन्वेषण किया गया। यह अन्वेषण साहित्य में कोई नयी वस्तु नहीं है। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखें तो प्रायः सभी नये वाद या नयी-नयी धाराएं अपने पूर्ववर्ती वादों या धाराओं की तुलना में कुछ नवीन अन्वेषण की प्यास लिये दिखायी पड़ती हैं। साहित्य की यह नवीनता सदैव श्लाध्य है, यदि वह अपना संबंध बदलते हुए सामाजिक जीवन के मूल सत्यों से बनाये रखे।

इस प्रकार नित नवता की एक परंपरा गतिमान रही है। फिर भी 'नयी कविता' नाम स्वतंत्रता के बाद लिखी गयी उन कविताओं के लिए रूढ़ हो गया, जो अपनी वस्तु-छवि और रूप-छवि दोनों में पूर्ववर्ती प्रगतिवाद और प्रयोगवाद का विकास हो कर भी विशिष्ट हैं। नयी कविता की प्रवृत्तियों की परीक्षा करने पर उसकी सबसे पहली विशिष्टता जीवन के प्रति उसकी आस्था में दिखायी

पड़ती है। आज की क्षणवादी और लघु मानववादी दृष्टि जीवनमूल्यों के प्रति नकारात्मक नहीं, स्वीकारात्मक दृष्टि है।

नयी कविता ने जीवन को उपर्युक्त धाराओं की कविताओं की तरह न तो एकांगी रूप में देखा, न केवल महत्व रूप में, बल्कि उसके जीवन को (वह चाहे किसी वर्ग का हो, चाहे व्यक्ति का हो, चाहे समाज का हो) जीवन के रूप में देखा) इसमें कोई सीमा नहीं निर्धारित की, मनुष्य किसी वर्गीय चेतना, सिद्धांत अथवा आदर्श की बैसाखी पर चलता हुआ इसके पास नहीं आया, वह अपने संपूर्ण दु:ख-सुख, राग-विराग के परिवेश से संयुक्त राम मनुष्य के रूप में आया।

परिवेश

आजादी के बाद लिखी गई उन कविताओं को नयी कविता कहा गया। जिनमें परंपरागत कविता से आगे नये जीवन- भावबोधों और नये शिल्प-विधान का अन्वेषण किया गया। यह नयापन आजादी के बाद बदले हए नए पर्यावरण की देन था। हालांकि साठ के बाद साठोत्तरी पीढ़ी के समकालीन कवियों ने जिस मोहभंग का महसूस किया। उसके त्रसद और कड़वे अनुभव भी इस कविता में मिलने लगते हैं।

जगदीश गुप्त ने नई कविता के विषय में लिखा, 'नई कविता उन प्रबुद्ध आस्वादकों को लक्षित करके लिखी जा रही है, जिनकी मानसिक अवस्था और बौद्धिक चेतना नये कवि के समान है अर्थात् जो उसके समानधर्मी है।' कई अर्थों में सन् 1947 के बाद की हिंदी कविता में अचरज में डालने वाले नए प्रयोगों के नाम पर असामाजिक, स्वार्थ-प्रेरित, अहम्निष्ठ, घोर रुग्ण व्यक्तित्त्व, दमित वासनाओं और कुंठाओं, चूड़ी. चोटी और चप्पल जैसे विषयों को बिना किसी बड़े रचनात्मक उद्देश्य के कविता का रूप दिया जाने लगा। ये सभी विशेषताएँ नयी कविता के कवियों ने प्रयोगवादी कविता से ग्रहण की थीं। इस युग की कविता में यह प्रवृत्तियाँ थोड़ी बदली हुई रूप में मिलती है।

दिलचस्प तथ्य यह है कि ऐसा करने वाले कई कवि पहले प्रगतिवादी थे, बाद में प्रयोगवादी हो गये वे अपने-आप को वामपंथी कहते थे, किंतु असलियत में यह बने हुए या दिखावटी वाममार्गी थे। इन कवियों ने प्रयोगवाद के विरोध को देखते हुए नयी कविता में शरण ली। जल्दी ही इनकी वास्तविकता उजागर

हो गई। लोगों ने नयी कविता के मुखौटे के पीछे दिखावटी प्रयोगवाद के इस चेहरे को पहचान लिया।

वास्तविक प्रयोगवादी कवियों ने दो बड़े काम किए- एक तो व्यक्ति के मन की उलझी हुई संवेदनाओं और अचेतन मन के सत्यों को आज के युग सत्य मानकर उन्हें उद्‌घाटित करने की कोशिश की। दूसरी– उन्होंने उन मानसिक सच्चाईयों को प्रकाशित कर सकने लायक नये शिल्प का अन्वेषण किया। प्रयोगवादी कविता जीवन के जुड़ाव से कटकर रह गयी क्योंकि इसका जीवन के प्रति बेहद निराश था।

नयी कविता का सफर सन् 1943 में अज्ञेय द्वारा संपादित और प्रकाशित 'तारसप्तक' से शुरू होती है। इसे तीन चरणों में बांटकर देख सकते हैं–

(1) पहले दौर की नयी कविता में लगभग वही कवि हैं, जिन की रचनाएँ 'तारसप्तक' में प्रकाशित हुई। 'तारसप्तक' के इन कवियों में केवल डॉ. रामविलास शर्मा ही ऐसे कवि थे, जो अंत तक प्रगतिवादी ही रहे। वे क्लासिक और अनिवार्य वामपंथ छोड़कर उदारवादी वाममार्ग पर चले। सप्तक-परंपरा से अलग कवियों में नरेश मेहता सरीखे कवियों की रचनात्मक प्रगतिशीलता विकसित हुई। इस चरण के अन्य कवियों में नागार्जुन ने तीखे राजनीतिक व्यंग्य लिखे। वे कविता को आगे ले गए। बालकृष्ण राव की कविता में आस्था, आशा और आत्मविश्वास देखने को मिलता है। जगदीश गुप्त के भीतर सौंदर्य और प्रेम का रचनाकार एवं सजग चित्रकार विकसित हुआ है। दुष्यंत कुमार की कविता गजल के शिल्प में व्यक्त हुई है। ठाकुर प्रसाद सिंह ने लोकगीतों की भाव संपदा को नवगीतों में उतारने की सफल कोशिश की है। कीर्ति चौधरी नयी कविता के प्रथम चरण की भाव चेतना की रचनाकार हैं। इस चरण की समाप्ति अज्ञेय के कविता संग्रह 'आंगन के द्वार पर' (सन् 1961) के प्रकाशित होने पर होती है।

(2) दूसरे चरण के नई कविता के कवियों में मुक्तिबोध, शमशेर बहादुर सिंह, धर्मवीर भारती, रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, केदारनाथ सिंह तथा विजयदेव नारायण साही प्रमुख हैं। यह सब अलग-अलग जमीनों और विचारधाराओं के कवि हैं। इनकी कविताओं में द्वंद्व, संघर्ष-विद्रोह, विसंगति, आक्रोश, बेचैनी की अभिव्यक्ति है। आधुनिकता का संपूर्ण युगबोध इन कविताओं का केंद्रीय स्वर है। इस दौर की

कविता में मानवीय स्वतंत्रता, लघु मानव की स्थापना और आत्म चेतना के प्रखर स्वर हैं।

(3) तीसरे दौर में पहुंचकर नयी कविता अलग-अलग दिशाओं में मुड़ती है। यह नयी कविता की विघटन की स्थिति न होकर उसके विकास की स्थिति थी। इस युग के लघु मानव के अस्तित्त्व के असमर्थता बोध से नयी कविता का कवि प्रभावित हुआ। तत्कालीन मनुष्य का सौंदर्यबोध नष्ट हो गया। इसका नए कवि पर असर हुआ। परिणाम यह हुआ कि विवशता, भय, ऊब, आतंक और अकेलेपन का बोध नयी कविता पर छाने लगा। नयी कविता की एक और काव्यधारा मनुष्य की स्थितिहीनता को स्वीकार कर रही थी। लेकिन वह मूल्यहीनता को लक्ष्य नहीं मानती थी। इस धारा के कवि मानव-मुक्ति और सत्य की उपलब्धि में विश्वास करते हैं। उनका दृष्टिकोण वैज्ञानिक है। इन कवियों में केदारनाथ सिंह, विपिन कुमार अग्रवाल, अशोक वाजपेयी, मणि मधुकर, अजित कुमार आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। यह नई कविता के अंतिम दौर में उभरने वाले कवि हैं। इनमें से मणि मधुकर, केदारनाथ सिंह और अशोक वाजपेयी परवर्ती पीढ़ी के महत्त्वपूर्ण कवि के रूप में प्रतिष्ठित हए।

साहित्यिक वातावरण

छायावादी व्यक्तिगतता से निकलकर प्रगतिवादी सामाजिकता में तो हम पहुंचे थे परंतू उसका प्रभाव समाप्त हो गया। नये 'प्रयोग' के स्वर भी मंद हो चुके थे। 'वाद' की प्रवृत्ति से कविता को बाहर कर जनता के बीच, जनता के दरबार में लाना कवियों को अभिप्रेत था नयी कविता में प्रगतिवाद का सामाजिक भावबोध है तो प्रयोगवाद की शिल्पगत विशिष्टता है। प्रयोगवादियों की आत्मकेंद्रितता, निराशा को उन्होंने सामाजिक व्यापार का आधार दिया। नयी कविता की भिन्नता यही है। लक्ष्मीकांत वर्मा ने 'दूसरा सप्तक' के बाद के कवियों ने सारी कविता को दूसरा सप्तक के निकटवर्ती पाते हुए किन्हीं अर्थों में कुछ भिन्नता का अनुभव किया। ये वही सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, साहित्यिक भिन्नता है, जो नयी कविता प्रवृत्तियों में विकसित हुईं। साथ ही विदेशी वादों का प्रभाव भी उस पर रहा है। खासकर वाद विषय में मनोविश्लेषण का तो अभिव्यक्ति क्षेत्र में बिंब प्रतीक का निराला द्वारा 'खून सींचा खाद का तूने अशिष्ट, डाल पर मंडरा रहा है कैपिटलिस्ट' की घोषणा ने परिस्थिति की

वास्तविकता को पहचाना था। जिसमे यथार्थ का दामन पकड़कर प्रगतिवाद उभर कर आया। वही प्रयोगवाद में सामाजिक अतियथार्थवाद में अपनी कुंठा की व्यंजना साहित्य में करता रहा।

नयी कविता मात्र सभी प्रकार के दूषणों से मुक्त प्रांगण में आयी। प्रयोगवाद को नई कविता की भूमिका कहा जा सकता है। देवराज ने सही कहा है कि, 'इन कविताओं को नयी कविता की पूर्ववर्ती कहा जा सकता है, इन कविताओं की प्रकृति का अध्ययन करने से इसमें और 'नयी कविता' आंदोलन की काव्य-चेतना में अंतर स्पष्ट परिलक्षित हो जाता है, किन्तु यह अन्तर विरोधी नहीं है, यह विकास प्रक्रिया का अन्तर है।' इसलिए देवराज इसे नयी कविता भी नहीं कहते उन्हें 'संक्रमणकालीन कविताएँ' कहते हैं, किन्तु 'नयी कविता' नाम अब उसके लिए एक बार चल पड़ा सो वही रहा हैं।

नई कविता की काव्यगत प्रवृत्तियाँ

(1) जीवन-जगत के प्रति अगाध प्रेम एवं आस्था

नयी कविता के कवियों ने जीवन को उत्सव के रूप में देखा है। उन्होंने समाज के प्रत्येक वर्ग के व्यक्ति के जीवन में इन संदर्भों को रेखांकित करने की कोशिश की है। नयी कविता में जीवन के प्रति प्रेम, आशा, विश्वास और आस्था की आवाजें सुनायी पड़ती हैं। नई कविता के प्रगतिशील रूझान के कवि केदारनाथ अग्रवाल 'युग की गंगा' की भूमिका में लिखते हैं कि- 'इन कविताओं में पलायनवादिता नहीं है, देश की जागृति, शक्ति का उबाल है।' केदार की 'कोहरा' शीर्षक कविता की निम्न पंक्तियाँ इसका प्रमाण हैं-

'पर निश्चय है, दृढ़ निश्चय है इतना, दिनकर जाएगा लपटों से लिपटा। भस्मीभूत करेगा कोहरा क्षण में, प्यारी धरती को स्वाधीन करेगा।'

'फूल नहीं रंग बोलते हैं' कविता की निम्न पंक्तियों में भी केदार जीवन के प्रति आस्था प्रकट व्यक्त हैं-

'पेड़ नहीं पृथ्वी के वंशज हैं फूल लिए फल लिए मानव के अग्रज हैं।'

दुष्यंत कुमार की कविता की निम्न पंक्तियों में भी हम इंसानी जीवन के साथ लगाव की भावना दिखाई देती हैं-

'चेतना ये, होकर सफल आए न आए, पर मैं जिऊंगा नयी फसल के लिए, कभी ये नयी फसल आए न आए।'

नई उम्र की नई फसल का प्रयोगवादी अनदेखा कर रहे थे नई कविता ने उसमें निहित आस्था-विश्वास को प्रेरणा के रूप में ग्रहण किया है।

(2) आस्था और विश्वास

नई कविता में निराशा, अनास्था और अविश्वास के साथ-साथ आशा, आस्था और विश्वास के स्वर भी सुखद प्रतिपक्ष के रूप में सुनाई पड़ते हैं। आरंभ में इन कवियों में घोर निराशा दिखाई देती है, लेकिन बाद में यही कवि आशा और विश्वास से भरी कविताएँ लिखने लगे। यही आशावादी दृष्टिकोण आगे चलकर समकालीन प्रश्नों और समस्याओं से जूझता हुआ दिखाई देता है। आशा का बिंब आगे चलकर स्वास्थ्य का प्रतीक बन गया है।

(3) मानवतावादी यथार्थ दृष्टिकोण

नयी कविता के कवियों का मानवतावाद किताबी आदर्श की हवाई कल्पनाओं पर नहीं टिका है। यथार्थ की प्रखर चेतना मनुष्य को उसके समूचे पर्यावरण सहित समझने का बौद्धिक उपक्रम तथा जटिल मानवीय संवेदना के अनेकायामी स्तरों तक अनुभूतिपरक और विश्लेषात्मक स्तरों तक पहुंचने की कोशिश करती है। इस युग में मानव की भौतिक प्रगति के अनेक रास्ते खुले हैं किंतु साथ ही उसके अपने अस्तित्त्व के लिए विषम-विसंगत परिस्थितियाँ भी पैदा हुई हैं। यह युग-सत्य है। मनुष्य को इन उलझी हुई और संकट में डालने वाली परिस्थितियों पर काबू पाना है। निराशा, पीड़ा और दुख को झेलकर सुखों को बांटना है। दुष्यंत कुमार के काव्य संग्रह 'सूर्य का स्वागत' में संकलित एक कविता की निम्न पंक्तियाँ इस अनुभूति को अभिव्यक्त करती हैं-

'छोटी-सी एक खुशी अधरों में आई मैंने उसको जला दिया मुझ को संतोष हुआ और लगा

हर छोटे को बड़ा करना धर्म है।'

केदारनाथ सिंह के कविता संग्रह 'अभी बिल्कुल अभी' की कविताएँ भी कवि के यथार्थपरक मानवतावादी विचारों को उजागर करती हैं।

(4) महानगरीय और ग्रामीण मानवीय सभ्यता का यथार्थ चित्रण

नयी कविता में महानगरीय शहरी तथा ग्रामीण जीवन संस्कारों के नवीन और यथार्थवादी चित्रण मिलते हैं। इस दौर में कविता के केंद्र गाँव और छोटे

शहरों से शिफ्ट होकर महानगर बन रहे थे कई सभ्यताओं और संस्कारों के आपसी टकराव नई कविता में दर्ज हुए हैं।

अज्ञेय ने शहरी जीवन की यथार्थ शक्ल अपनी 'साँप' शीर्षक में उभारते हुए लिखा है-

'साँप! तुम सभ्य तो हुए नहीं, नगर में बसना भी तुम्हें नहीं आया। एक बात पूछा-(उत्तर दोगे?) तब कैसे सीखा डसना- विष कहाँ से पाया?'

यहाँ तीखा व्यंग्य भाव है जबकि धूमिल अपने गांव खेवली का मार्मिक चित्र प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं-

'वहाँ कोई सपना नहीं है। न भेड़िये का डर। बच्चों को सुलाकर औरतें खेत पर चली गई हैं। खाये जाने लायक कुछ भी शेष नहीं है। वहाँ सब कुछ सदाचार की तरह स्पाट और ईमानदारी की तरह असफल है।'

नई कविता में परिवेश, मनुष्य-जीवन और उसकी सभ्यता में आते बदलावों का यथार्थ अंकन हुआ है।

(5) घोर वैयक्तिकता

नई कविता का केंद्रीय विषय निजी मान्यताओं, विचारधाराओं एवं अनुभूतियों को उजागर करना है। नई कविता अहम के भाव से ग्रस्त और त्रस्त है। कई जगह वह आत्म विज्ञापन का घोर समर्थक नजर आती हैं।

'साधारण नगर के एक साधारण घर में मेरा जन्म हुआ --'--'--' जुट गया ग्रंथों में मुझे परीक्षाओं में विलक्षण श्रेय मिला।'

यह नए कवि भारत भूषण अग्रवाल के जीवन का निजी सत्य है।

(6)निराशा-

नई कविता में मनुष्य की सहायता, विवशता, अकेलापन,मानवीय-मूल्यों का विघटन, सामाजिक विषमताओं तथा युद्ध के विकराल परिणामों का चित्रण किया गया है जिससे कवि क हताश मन का उदघाटन हाता है-

'प्रश्न तो बिखरे यहाँ हर ओर है, किंतु मेरे पास कुछ उत्तर नहीं।'

कवि अपने चारों ओर सवाल-दर-सवाल महसूस करता है, किंतु उनका उत्तर उसके पास नहीं है।

'आस्था न काँपे, मानव फिर मिट्टी का भी देवता हो जाता है।' अज्ञेय इन पंक्तियों में मानव पर विश्वास व्यक्त करते हैं।

(7) नास्तिकता

बौद्धिक एवं वैज्ञानिक युग से संबंधित होने के कारण नई कविता में भावात्मक दृष्टिकोण से विरोध दिखाई पड़ता है। नए कवि का ईश्वर, नियति भाग्य, मंदिर और अन्य देवी-देवताओं में भरोसा नहीं है। वह स्वर्ग-नरक का अस्तित्त्व नहीं मानता-

'उर्वशी ने डांस स्कूल खोल दिया है। गणेश जी टॉफी खा रहे हैं।' भारतभूषण अग्रवाल इन पंक्तियों में देवी-देवताओं का उपहास उड़ाते हैं।

(8) क्षणवाद का महत्त्व

नयी कविता क्षणों की अनुभूतियों को महत्व देती है। वह क्षणों में बंटे जीवन की पूर्णता क्षणों में जीना चाहती है। नयी कविता के कवियों के यहाँ एक-एक क्षण का बोध जीवन की चरम अनुभूति और संदर्भगर्भित जीवन सत्य है। अपने दर्शन के अनुसार वे जीवन का संपूर्ण उपभोग करना चाहते हैं। नयी कविता अनुभूति पूर्ण गहरे क्षण-प्रसंग, कार्य-व्यापार या सत्य को उसकी आंतरिक मार्मिकता के साथ पकड़ लेना चाहती है। इस प्रकार जीवन के सामान्य दीखने वाले व्यापार या प्रसंग नयी कविता में नया अर्थ-संदर्भ पा जाते हैं-

'आओ इस झील को अमर कर दें। छूकर नहीं किनारे बैठ कर भी नहीं एक संग झांक इस दर्पण में अपने को दे दें हम इस जल को जो समय है।'

इन रचनाकारों के लिए 'जो भी है। बस यही एक पल है' का क्षणवादी अनुभव समूचा जीवन सत्य बन जाता है। नई कविता का कवि क्षण-विशेष की अनुभूति को विशेष महत्व देता है। उसके लिए सुख का एक क्षण संपूर्ण जीवन से अधिक महत्वपूर्ण है-

'एक क्षण—क्षण में प्रवहमान व्याप्त संपूर्णता।' नया कवि क्षण में ही जीवन की पूर्णता के दर्शन करता है।

(9) भोगवाद और वासना

नई कविता में क्षणवादी विचारधारा ने भोगवाद को जन्म दिया है। नई कविता में भोग और वासना का स्वर मुख्य है। नया कवि आध्यात्मिक दृष्टिकोण के अभाव के कारण उधार की उत्सवधर्मिता का पक्षपाती बन गया है। इसके बहाव में उसने सामाजिक मूल्यों का उल्लंघन भी किया है। वह आत्मिक सौंदर्य की उपेक्षा कर दैहिक सौंदर्य को सर्वोपरि मानता है। इस प्रकार नई कविता

कहीं-कहीं समाज में अश्लीलता, अनैतिकता और अराजकता का वातावरण उत्पन्न करती हुई दिखाई पड़ती है-

'प्यार है अभिशप्त तुम कहाँ हो नारी?' अज्ञेय की यह पंक्तियाँ इस संदर्भ में देखने योग्य है।

(10) नए जीवन मूल्यों की प्रस्तावना

नयी कविता नए जीवन मूल्यों को प्रस्तावित करती है। इस सिलसिले में यह कवि पुराने मूल्यों की परीक्षा करते है। ये मूल्य नए युग की आवश्यकताओं के परिवेश में कितने खरे उतरते हैं और अपने परंपरित रूप में कितने असंगत हो गये हैं? इनका कितना स्वरूप आज के लिए प्रासंगिक है? इत्यादि प्रश्न नयी कविता का कवि करता है। उसकी सवालिया निगाह इन मूल्यों के नए मनुष्य के संदर्भ में परखती है। इस पड़ताल में मूल्यगत असंगतियाँ नए कवि के व्यंग्य का निशाना बनती हैं। नये संदों में सिद्ध होने वाले मानवीय मूल्यों के प्रति कवि अपनी आस्था व्यक्त करते हैं। नई कविता बदलते मापदंड और मूल्यों या मूल्यहीनता पर प्रकाश डालती है।

(11) व्यंग्य का तीखा स्वर

नयी कविता में व्यंग्य का स्वर बेहद तीखा और निर्मम है। नयी कविता का कवि जीवन की व्यावहारिकता और तार्किकता पर भरोसा करता है। वह देखता है जीवन की असलियत और सोच में काफी अंतर है। ऐसे में विरूपित यथार्थ के प्रति उसका व्यंग्यात्मक तेवर जाग जाता है। उसका दृष्टि यथार्थ को अनदेखा नहीं कर पाती-

'झाड़ने फूंकने वालों को बुलाओ या किसी डॉक्टर को दिखाओ ठीक हो जाएगा सर्प का काटा है न मैंने समझा किसी मनुष्य ने काट खाया है।'

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना व्यवस्था और तंत्र द्वारा पोषित चटकार संस्कृति।

'क्योंकि कुत्ता आदत से टुकड़खोर है तुम्हें टुक्कड़ खोरी के रास्ते बंद करने होंगे।'

अपनी कविता 'गरीबी हटाओ' में उनका व्यंग्य और भी तीखा और मार्मिक हो जाता है-

'गरीबी हटाओ सुनते ही सब के सब फटे जूते सिलवा और चप्पलों में कील जड़वा चल दिये. काफी चल लेने के बाद जब वे सोचने बैठे किधर

जायें। तब तक उनके जूते फिर टूट चुके थे और वे नंगे पैर थे मोची की तलाश में।'

व्यंग्य अभावों से उपजता है और सवाल में बदलकर करुणा जगाता है। रचनाकार को अपने समय और समाज को विसंगतियों बर्दाश्त नहीं होती तो उसकी प्रश्नाकुलता व्यंग्य भाव में बदल जाती है। इसे नयी कविता में भी देखा जा सकता है।

नई कविता में कवियों ने अपने समय और समाज में व्याप्त विषमता का व्यंग्यात्मक चित्रण किया है। व्यंग्यात्मक शैली में जीवन और सभ्यता के चित्रण में काव को आशातीत सफलता भी मिली है। श्रीकांत वर्मा ने 'नगरहोन मन' शीर्षक कविता में आज के नागरिक जीवन की स्वार्थपरता, छल-छद्म-कपट से भी जिंदगी को स्वर दिया है। अज्ञेय की कविता 'साँप' में भी नागरिक सभ्यता पर तीखा कटाक्ष है।

(12) अति बौद्धिकता

नई कविता के कवियों में महसूस करने की क्षमता कम है। कवियों ने बुद्धि के द्वारा दिमागी कवायद की है। नया कवि हृदय को प्रकट न करके युद्ध का ही अधिक आश्रय लेता है। उन्होंने अपनी बुद्धि से अपने समय और समाज की समस्या पर मजी की समस्या पर गर्भ चितता ददकत की है और ये कवि अपनी समस्याओं का समाधान भी बौद्धिकता के धरातल पर खोजते हैं।

(13) नए शिल्प की प्रतीक योजना और बिंब विधान

नयी कविता के कवियों ने नएपन के अतिआग्रह की वजह से विलक्षण और अपूर्व प्रतीक प्रयोग किया है। अज्ञेय लिखते हैं-

'अगर मैं यह कहूं बिछली घास हो तुम लहलहाती हवा में कलगी छरहरी बाजरे की?'

मुक्तिबोध के नए उपमान विचित्र हैं-

'अहं भाव उत्तुंग हुआ है तेरे मन में जैसे धूरे पर उठा है धृष्ट कुकुरमुत्ता उन्मुक्त'

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविता का प्रतीकार्थ निराला है। एक उदाहरण देखिए-

'लोकतंत्र को जूते की तरह लाठी में लटका भागे जा रहे हैं सभी सीना फुलाए।'

नयी कविता में ऐसी अनूठी बिंब-योजना मिलती है जितनी इस से पूर्ववर्ती हिंदी कविता में नहीं थी। नयी कविता के बिंब अधिकतर प्रतीकात्मक और सांकेतिक होते हैं। कई जगह उसमें जटिलता और दुरुहता भी मिलती है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की 'यह खिड़की' शीर्षक कविता का कथ्य अपना शिल्प निर्धारित करता हुआ कई अमिट बिंबों की रचना करता है-

'जिंदगी मरा हुआ चूहा नहीं है जिसे मुख में दबाए बिल्ली की तरह हर शाम गुजर जाए और मुंडेर पर कुछ खून के दाग छोड़ जाए।'

विचारों के कवि श्रीकांत वर्मा भी कई जगह प्रतीकात्मक बिंबों में अपनी बात रखते हैं-

'एक अदृश्य टाइपराइटर पर साफ-सुथरे कागज-सा चढ़ता हुआ दिन तेजी से छपते मकान, घर, मनुष्य...'घास का घराना' के सृजक मणि मधुकर लिखते हैं-

'मेरी असलियत में एक छेद है, चुगलखोर है और सचमुच मुझे उस का खेद है।'

बेहद प्रतिभाशाली लेकिन उतने ही अल्पचर्चित अजित कुमार की निम्न पंक्तियाँ नई कविता की सार्थक और कतई नई बिंब-योजना के उदाहरण-रूप में अक्सर प्रस्तुत की जाती हैं-

'चंदनी चंदन सदृश हम क्यों लिखें? मुख हमें कमलों सरीखे क्यों दिखें? हम लिखेंगे चाँदनी उस रुपए सी है जिसमें चमक है पर खनक गायब है हम कहेंगे जोर से मुंह पर अजायब है जहाँ पर बेतुके, अनमोल, जिंदा और मुर्दा भाव रहते हैं।'

नए कवियों ने आधुनिक खड़ी बोली के अनेक रूपों को प्रयुक्त किया है तथा अनेक नए विशेषणों एवं क्रियापदों का भी निर्माण किया है। इन्होंने भाषा के सौंदर्य में वृद्धि के लिए नवीन प्रतीक-योजना, बिंब-विधान एवं उपमान योजना को भी अपनाया है। प्राकृतिक बिंब का एक नवीन उदाहरण दर्शनीय है-

'बूंद टपकी एक नभ से किसी ने झुक कर झरोखे से कि जैसे हँस दिया हो!'

नए कवियों ने छंद के बंधन को स्वीकार न करके मुक्त परंपरा में ही विश्वास रखा है। कहीं लोकगीतों के आधार पर रचना की है, कहीं अपने क्षेत्र

में नए प्रयोग भी किए हैं। कुछ ऐसी भी कविताएँ लिखी हैं जिनमें न लय है, न गति है, बल्कि पद्य जैसी शुष्क और नीरस है। कुछ नए कवियों ने रुबाइयों, गजलों और सॉनेट पद्धति का भी इस्तेमाल किया है। नई कविता के कवियों ने बिल्कुल उपमानों, प्रतीकों और बिंबों का प्रयोग किया है। अज्ञेय पुराने उपमानों से उकताकर नवीन उपमानों के प्रयोग पर बल देते हैं। नया कवि वैज्ञानिक उपमानों का प्रयोग भी करता है। इन कवियों ने कलात्मक, प्राकृतिक, वैज्ञानिक, पौराणिक तथा यौन प्रतीकों का खुलकर प्रयोग किया है। कलात्मक प्रतीक का उदाहरण देखिए-

'ऊनी रोएंदार लाल-पीले फूलों से
'_ _'_ _'_ _'_ _'_ _'
छोटा-सा एक गुलदस्ता है।'

नई कविता के बिंब का धरातल भी व्यापक है। इन कवियों ने जीवन। समाज और उनसे संबंधित समस्याओं के लिए सार्थक एवं सजीव बिंबों की योजना की है। ये बिंब मानव-जीवन और प्रकृति से लिए गए हैं-

'मरहरे वाले शौचालय के जंगल में झुकी पीपल डाल आचमन करती नदी का।'

नई कविता आज भी नए कथ्यरूप में मौजूद है। साठोत्तरी समकालीन कविता, कविता, विद्रोही कविता, संघर्षशील कविता, आज की कविता आदि अनेक काव्य धाराएँ नयी कविता आंदोलन के बाद अस्तित्त्व में आई लेकिन सब में दृश्य-अदृश्य रूप में एक अमिट अंतर्धारा बनकर नयी कविता की उपस्थिति महसूस होती रही है। आज की कविता में भी नई कविता खुद को विकसित कर रही है।

शिल्पगत विशेषता

प्रयोगवादी यों की शिल्प प्रवृत्ति का प्रभाव नयी कविता में दिखाई देता है। बिम्ब, प्रतीक, नवीन अप्रस्तुत विधान आदि का प्रयोग पूर्ववर्ती कविता के साथ नयी परिवर्तन दृष्टि से किया गया है। नयी कविता के भीतर अभिव्यक्ति की सम्प्रेषणीयता का प्रश्न महत्वपूर्ण हो चुका है। भाषा सरंचना, भाषा प्रयोग, अनुभावित संवेद्य-तत्त्व, गतिशीलता की दृष्टि से नयी कविता की भाषा विशिष्ट है।

भाषा

नये कवियों में यह विचार पनपा की परंपरागत भाषा से युग-जीवन के सही चित्रण की आशा नहीं की जा सकती थी। मूल रूप में यही कारण था जिससे नये कवि को भाषा संस्कार की आवश्यकता पड़ी।' नयी कविता भाषा की विशेषता यह है की वह किसी एक पद्धति में बंधकर नहीं चलती किन्तु प्रभावी एवं सशक्त अभिव्यक्ति के लिए उत्कृष्ट कवि बोलचाल की भाषा-प्रयोग को प्राधान्य देता है। नयी कविता भी उसी का स्वीकार करती है। भवानी प्रसाद की 'सतपुड़ा के जंगल' कविता जंगल प्रकृति और प्रवृत्ति दोनों को सामने लाती है आशोक वाजपेयी की कविता शहर अब भी संभावना है, का उदाहरण देवराज ने दिया है, 'माँ' लौटकर जब आऊँगा/क्या लाऊँगा/यात्रा के बाद की थकान/सूटकेस में धर भर के लिए कपड़े/मिठाइयां, खिलौने/बड़ी होती बहनों के लिए अंदाज से नयी फैशन की चप्पलें संस्कृत, अंग्रेजी उर्दू, जनपदीय बोली-शब्द का प्रयोग नयी कविता में हुआ है। त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल, धूमिल, सर्वेश्वर आदि में यह देखे जाते है। 'लोक भाषा, लोक धून' और 'लोक संस्कृति' का प्रयोग 'गीति साहित्य' में हुआ है। अज्ञेय की कलगी बाजरे की कविता उत्कृष्ट उदाहरण है।

नयी कविता के नये मुहावरे भाषा को 'सार्वजनीक' बनाते हैं। भाषा का साधारणीकरण नयी कविता की विशेषता है। कहीं कही सपाटबयानी या 'वक्तव्य नुमा' भाषा का प्रयोग भी प्रचुर हुआ है। धूमिल आदि की भाषा इसी प्रकार की है। सामान्य आदमी, सामान्य भाषा उनकी खासियत है

'रांपी से उठी हुई आँखों ने मुझे क्षणभर टटोला और फिर जैसे पतियाते हुए स्वर में वह हँसते हुए बोला बाबूजी! सच कहूँ-मेरी निगाह में न कोई छोटा है न कोई बड़ा है मेरे लिए, हर आदमी एक जोड़ी जूता है, जो मेरे सामने मरम्मत के लिए खड़ा है।'

नयी कविता में गद्य भाषा का प्रयोग भी सर्व स्वीकृत हो गया है। अधिकार लम्बे चौड़े वाक्य, वक्तव्य देते, बात समझाते, वर्णन करने इसी प्रकार की भाषा प्रयुक्त हुई है।

अज्ञेय की कविता का एक उदाहरण-

'और एक चौथा मोटर मैं बैठता हुआ चपरासी से फाइलें उठाएगा एक कोई बीमार बच्चे को सहलाता हुआ आश्वासन देगा-देखो, हो सका तो जरूर ले आऊँगा'

और एक कोई आश्वासन की असारता जाते हुआ भी मुस्काराकर कहेगा– 'हाँ, जरूर, भूलना मत। इससे क्या कि एक की कमर झुकी होगी और एक उमंग से गा रहा होगा– 'मोसे गंगा के पार...' और एक के चश्मे का काँच टूटा होगा और एक के बस्ते में स्कूल की किताबें अधिक से अधिक फटी हई होगी? एक के कुरते की कुहनियाँ छिदी होंगी,

एक के निकर में बटनों का स्थान एक आलपीन ने लिया होगा। नयी कवियों के रचनाओं में चिन्ह संकेतों से भी कविता पंक्तियाँ लिखी जा चुकी है। एक शब्द एक पंक्ति बना है। तो दूसरी ओर विराम, अर्धविराम, पूर्णविराम के चिन्हों को तिलांजलि दी गयी है। जैसे– 'भाषण में जोश है पानी ही पानी है पर कीचड खामोश है'

मुक्तछंद का, मुक्तक शैली का स्वीकार नयी कविता के धारा में हुआ है। जटिल एवं उलझी हुई अनुभूतियों को व्यक्त करते समय जैसा चाहा वैसा प्रयोग हुआ है। इसको देवराज भाषा क्षेत्र में 'विद्रोह' कहते हैं और इसके पीछे 'चमत्कार की अपेक्षा विवशता' की अधिकता मानते हैं। 'बदले हुए परिवश को चित्रित करने के लिए उन्होंने 'एक ऐसा मुहावरा स्वीकार कर लिया था, जिसके अनुसार आपाद–मस्तक कीचड़ से भरे मानव को भी मानव तुम सबसे सुंदरतम कहना जरूरी था।' इसलिए उन्होंने ने भाषा को ही नये संस्कार दिये। प्रगति–प्रयोग काल की अपेक्षा नयी कविता की भाषा–शैली नयी ही रही है।

प्रतीक

नयी कविता में परंपरागत तथा नये प्रतीकों का प्रयोग हुआ है। कुछ कवियों के कविता शीर्षक ही प्रतीकात्मक है अज्ञेय की 'नदी के द्वीप', सागर तट की सीपियाँ, मुक्तिबोध की 'ब्रह्मराक्षस', 'भूल–गलती' 'लकड़ी का रावण' अंधेरे में 'अंधेरा, काला पहाड, तिलक की मुर्ती, गांधी, आकाश में तालस्ताय आदी प्रतीक ही है। 'ब्रह्मराक्षस' वर्तमान में बाँह यांत्रिक संघर्षों के बीच पीड़ित मानव का प्रतीक है, तो 'लकड़ी का रावण' शोषक सत्ता का और 'वानर जनवादी क्रांतिकारियों के प्रतीक है। 'बढ़न न जाय। छिन जाए। मेरी इस अद्वितीय सत्ता के शिखरों पर स्वर्णाभ हमला न कर बैठे खतरनाक कुहरे के जनतंत्री। वानर से नर ये।'

नयी कविता में तीन प्रतीक रूपों का प्रयोग हुआ है। एक जिनका संबंध भारतीय काव्यशास्त्र की परंपरा से है। इनमें प्राकृतिक, पौराणिक, ऐतिहासिक,

अन्योक्ति मूलक, रूपक मूलक और बिम्ब मूलक आदि आते हैं। दूसरे वे प्रतीक है जिन्हें नये कवियों ने गढ़ा है। और तीसरे वे प्रतीक है, जो भारतीय साहित्य में किसी एक भाव-बोध के प्रतिनिधि हैं तथा दूसरे देशों के साहित्य में किसी दूसरे भाव-बोध के किन्तु नये कवियों ने दूसरे देश की मान्यता के आधार पर ही उन्हें अपने काव्य में प्रयुक्त किया है-

'लो क्षितिज के पास वह उठा तारा, अरे! वह लाल तारा नयन का तारा हमारा सर्वहारा का सहारा' में भारत भूषण अग्रवाल ने 'लाल तारा' रूसी क्रांति के रूप में प्रयुक्त किया है जबकि भारत में वह अपशकुन का प्रतीक माना जाता है। अज्ञेय की 'साँप' 'बावरा आहेरी' इसी प्रकार की कविता है। खंडकाव्यों में पौराणिक प्रतीकों का प्रचुर प्रयोग हुआ है। कर्ण, द्रोण, अभिमन्यू, एकलव्य, अश्वत्थामा, सीता, द्रोपदी, आदि।

बिम्ब

बिम्ब को मूर्त शब्द-चित्र कहते हैं। कविता के लिए वह महत्वपूर्ण साधन है, जो कवि अनुभूति को प्रभावक्षमता के साथ पाठकों तक पहुंचाता है। स्वंयनिर्मित मौलिक बिम्ब का प्रचुर प्रयोग नयी कविता में हुआ है। बिम्ब कई प्रकार के होते हैं। मुक्तिबोध ने बिम्बों का समर्थ प्रयोग कविता में किया है। उन्होंने मानव-हृदय की जटिलता को एक प्राकृत गुहा के समान बिंब माना है- 'भूमि की सतहों के बहुत नीचेध्अंधियारी एकान्त प्राकृत गुहा एक।'

कई वैज्ञानिक बिंबों का प्रयोग आधुनिक जीवन को व्यक्त करने के लिए मुक्तिबोध ने किया है- सितारे आसमानी छोरध्पर फैले हुए अनगिनत दशमलव से दशमलव-बिंदूओं के सर्वतः पसरे हुए उलझे गणित मैदान में। अथवा एक-एक वस्तु या एक-एक प्राणाग्नि-बम है। ये परमास्त्र है, प्रक्षेपास्त्र है, यम है। शून्याकाश में से होते हुए वेध्अरे, अरि पर ही टूट पड़े अनिवार। प्रक्षेपास्त्र, शेवलेट-डाज, रेडियो एक्टिव रत्न, कैमरा, रेफ्रिजरेटर जैसे बिंब मिलते है, जो पूरी तरह आधुनिक जीवन संवेदों को व्यक्त करते हैं। प्रतीकात्मक बिंबों का तो खजाना ही नयी कविता में है। मुक्तिबोध में ब्रह्मराक्षस, अंधी गुफा, भूत आदि। के साथ ही संशय की एक रात, कनुप्रिया, असाध्य वीणा, मोचिराभ, आदि में कई बिंबों को प्रस्तुत किया गया है। मनोवैज्ञानिक तथा यौन बिंबों को भी प्रयुक्त किया गया है परंतू उत्तरोत्तर नयी कविता ने बिंबों की जगह सपाटबयानी वक्तव्य दिये हैं। बाद के कवियों ने संभवतः बिंबों को काव्य का साधक मानने के बजाय

बाधक ही माना है। केदारनाथ सिंह जैसे कवि जिन्हे बिंबों का कवि कहा जाता है वे भी कह रहे है-

'तुमने जहाँ लिखा है 'प्यार' वहाँ लिख दो 'सड़क' फर्क नहीं पड़ता। मेरे युग का मुहावरा है फर्क नहीं पड़ता और भाषा जो मैं बोलना चाहता हूँ मेरी जिहवा पर नहीं बल्कि दाँतों के बीच की जगहों में सटी हुई है।'

डॉ. नामवर सिंह ने ठीक कहा है- वस्तुः इस बिंब-मोह के टूट ने का कारण सामाजिक और ऐतिहासिक है। छठे दशक के अंत और सप्तवें दशक के आरंभ में सामाजिक स्थिति इतनी विषम हो उठी कि उसकी चुनौती के सामने बिंब-विधान कविता के लिए अनावश्यक भार प्रतीत होने लगा।

लय, तुक और छंद

लय, तुक और छंद की अवधारणा छायावाद से हटने लगी है। निराला ने मुक्त छंद की घोषणा की पंत ने भी नयी काव्य भाषा को अपनाया नयी कविता ने तो छंद को अस्वीकृत ही किया परंतु उसके नये प्रयोग भी हुए है। देवराज ने ठीक कहा है- नयी कविता में छन्द को केवल घोर अस्वीकृति ही मिली हो- यह बात नहीं है, बल्कि वहाँ इस क्षेत्र में विविध प्रयोग भी किए गए हैं। इस संबंध में पहला प्रयोग हिन्दी के पुराने छंदों को तोड़कर नया मुक्त छंद बनाया गया, जैसे गिरिजाकुमार ने कवित्त व सवैया में तोड़-फोड़ की रामविलास शर्मा ने छनाक्षरी से रुबाई का निर्माण किया दूसरे प्रयोग में विविध देशी-विदेशी भाषाओं के छंदों को नयी कविता में लाया गया। देशी भाषा में, बंगला, मराठी, संस्कृत और विविध लोक-भाषाओं के छंद समय समय पर प्रयोग किए गए। विदेशी भाषाओं में अंग्रेजी के 'सॉनेट', 'बैलेड', जपानी का 'हायकू' और चीनी फ्रेंच और अमरीकी कविता के चित्रों को नयी कविता में प्रयोग किया गया।' छंद का संबंध संगीत से रहा है और संगीत तुक, लय से जुड़ा है। नयी मुक्त छंद कविता 'गीत कविता के रूप में विकसित हुई है परंतू इन गीतों में केवल भावानकलता नहीं जीवन की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व मनोवैज्ञानिक स्थितियों का अंकन है। 'गीत' नयी कविता की महत्वपूर्ण विशेषता मानी जाती है। जो लोकगीत 'लोक धुनों लोक परंपराओं, लोक संस्कृति' से जुड़ा है।

उपसंहार

नई कविता जनता की और जनता के साथ की कविता है। वह परंपरा से विच्छेद होने के बावजूद परंपरा से मुक्त नहीं है। इस कविता आंदोलन से हिन्दी

साहित्य में मुक्तिबोध, भवानी प्रसाद मिश्र, शमशेर बहादुर सिंह, कीर्ति चौधरी, भारतभूषण अग्रवाल, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, केदारनाथ अग्रवाल, लक्ष्मीकांत वर्मा, जगदीश गुप्त, मुद्रा राक्षस, नेमिचंद्र जैन, प्रभाकर माचवे, राजकमल चौधरी, रघुवीर सहाय, श्रीकांत वर्मा, दुष्यन्त कुमार, धूमिल, कुंवर नारायण, कैलाश वाजपेयी, श्रीराम वर्मा, दुधनाथ सिंह जैसे सशक्त महत्वपूर्ण कवि उभरकर आये। देवराज ने कहा है की 'इस कविता ने ही पहली बार व्यक्ति को व्यक्ति की परंपरा में रखकर देखने का प्रयास किया। भक्तिकाल से लेकर प्रगतिवाद तक व्यक्ति को मंदिर, महल, स्वर्ग, आकाश, और मार्क्स की तथाकथित मार्क्स वादियों द्वारा स्वयं की गई अस्वाभाविक व्याख्याओं के रंगीन फोटो में लपेटा जा रहा है। नयी कविता ने ही उसे आम जिन्दगी की अच्छाइयों और बुराइयों के बीच मनोवैज्ञानिक रूप में चित्रित किया है। अत: नयी कविता ने व्यक्ति को परंपरा से काटा नहीं, बल्कि जोड़ा है। 'यह मत सही भी प्रतीत होता हो परंतु कबीर जैसे कवियों ने जनता की बात जनता की भाषा में कही है, वह हिन्दी साहित्य में पहला कवि और उसकी कविता है जिसने जनाभिव्यक्ति को पूर्ण रूपेण स्वीकार किया था। नयी कविता में यह परंपरा फिर विकसित होती है। यह उसकी कटी परंपरा से जुडी भावनाएँ हैं ऐसा कहा जायेगा। 'भक्ति काल' शब्द प्रयोग जब देवराज करते है तो कबीर उसी काल में आते हैं और उन्हें यों खारिज करना, योग्य होगा, क्योकि शुक्लजी के अनुसार 'ऊँच-नीच और जाति-पॉती के भाव का त्याग और भक्ति के लिए मनुष्य मात्र के समानाधिकार का स्वीकार था। 'कबीर में मनुष्य मात्र के लिए समानाधिकार की भावना ने उन्हें सामाजिक, जनताभिमुख बनाया और उन्हीं के दु:ख, पीड़ा, विषमता को कविता में लाया मनुष्य पर ईश्वर, धर्म, परंपरा, रुढ़ियों की गुलामी के वर्चस्व को उठाया।

वर्ण-विषय के साथ भाषा भी उसी प्रकार की रही है। 'खिचड़ी' अथार्त साधारण जन की भाषा है। नयी कविता में भी 'भीड़', 'समुह' अभिव्यक्त हुआ है। उस की स्वतंत्रता की रक्षा का प्रश्न खड़ा किया गया है। उसके अन्तबाहय व्यक्तित्त्व की अभिव्यक्ति ने उसे कबीर की परंपरा से जोड़ा ऐसा कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी।

12

आधुनिक काल

आधुनिक काल–1850 से आगे
1900 आचार्य शुक्ल के अनुसार
नामकरण –
गद्यकाल–आचार्य शुक्ल
वर्तमानकाल–मिश्र बंधु
आधुनिक काल–रामकुमार वर्मा और गणपति चन्द्रगुप्त

हिन्दी गद्य का उद्‌भव एवं विकास

विठ्‌ठलदास के द्वारा 'शृंगार रस मण्डल' नाम ग्रंथ बृज भाषा में लिखा गया।

वार्ता साहित्य में गोकुल नाथ के दो ग्रंथ प्रमुख हैं।

84 वैष्णवन की वार्ता–वल्लभाचार्य के शिष्यों का वर्णन

252 वैष्णवन की वार्ता–विठ्‌ठलनाथ के शिष्यों का वर्णन

नाभादास द्वारा रचित 'अष्टयाम' बृज भाषा गद्य में है।

खड़ी बोली गद्य की महत्वपूर्ण रचना गंगकवि द्वारा वाचित 'चन्द छंद वर्णन की महिमा' है।

रामप्रसाद निरन्जनी ने ''भाषायोग वशिष्ठ'' नामक गद्य ग्रंथ साफ सुथरी खड़ी बोली में लिखा।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ''रामप्रसाद निरन्जनी'' को प्रथम प्रौढ़ गद्य लेखक माना है।

खड़ी बोली गद्य की प्रारम्भिक रचनाएं एवं रचनाकार -

1. **लल्लू लाल**-''प्रेमसागर'' भागवत् के दशम स्कन्ध की कथा का वर्णन

विशेषताएं -

ये फोर्ट विलियम कॉलेज के हिन्दी, उर्दू अध्यापक ''जॉन गिलक्राइस्ट'' के आदेश से प्रेमसागर की रचना कार्य में लगे।

फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना-4 मई 1800 ई.

ये आगरा के गुजराती ब्राह्मण थे।

खड़ी बोली तथा उर्दू दोनों में रचनाएं कीं।

इन्होंने ''लाल चन्द्रिका'' नाम से बिहारी सतसई पर टीका लिखी।

कोलकाता में ''संस्कृत प्रेस'' की स्थापना की

उर्दू में रचनाएं-बेताल पच्चीसी, सिंहासन बतीसी, शकुन्तला नाटक

2. सदल मिश्र -

ये फोर्ट विलियम कॉलेज में काम करते थे।

इनकी प्रमुख रचना ''नासिकेतोपाख्यान'' है।

इनकी भाषा में पूर्वीपन था।

3. मुंषी सदासुख लाल ''नियाज'' -

ये दिल्ली के रहने वाले थे।

हिन्दी में ''श्रीमतभागवत पुराण'' का अनुवाद ''सुखसागर'' नाम से किया।

इन्होंने हिन्दुओं की बोल-चाल की शिष्ट भाषा में रचना की।

4. इन्शां अल्ला खां -

रचना-''रानी केतकी की कहानी'' इसको ''उदयभान चरित'' भी कहते हैं।

ये उर्दू के प्रसिद्ध शायर थे। जो दिल्ली के उजड़ने पर लखनऊ आ गए थे।

इन्होंने ठेठ हिन्दी में लिखा।

इनकी भाषा सबसे अधिक चटकीली, मुहावरेदार एवं चुलबुली है।

शुक्ल जी ने इन्हें विषेष महत्व प्रदान किया

5. राजा शिवप्रसाद 'सितार-ए-हिन्द' -

ये हिन्दी-उर्दू के संघर्ष काल में हिन्दी के पक्षधर बनकर सामने आए।

जबकि इनके विरोधस्वरूप सर सय्यद अहमद खां ने स्कूलों में हिन्दी पढ़ाने का विरोध किया। तथा गासो-द-तासी नामक फ्रांसीसी विद्वान ने हिन्दी-उर्दू के इस झगड़े को फ्रांस में बैठकर हवा दी।

सितार-ए-हिन्द शिक्षा विभाग में इन्सपेक्टर के पद पर थे तथा अंग्रेजों के कृपापात्र थे।

इन्होंने मध्यवर्ती मार्ग का अनुसरण किया तथा बड़ी चतुराई से हिन्दी की रक्षा की।

इन्होंने 'बनारस' अखबार काशी से निकाला (1849)

प्रमुख रचनाएं -

राजा भोज का सपना-सरल हिन्दी का प्रयोग

मानव धर्मसार-संस्कृतनिष्ठ हिन्दी का प्रयोग

इतिहास तिमिरनाषक-उर्दूपन

आलसियों का कीड़ा -

6. राजा लक्ष्मणसिंह -

ये आगरा के रहने वाले थे।

इन्होनें ''प्रजा हितैषी'' नामक पत्र आगरा से निकाला।

''अभिज्ञान शाकुन्तलम्'' का अनुवाद शुद्ध हिन्दी में किया।

इनकी भाषा को देखकर अंग्रेज विद्वान फ्रेडरिक पिन्काट बहुत प्रसन्न हुए।

पिन्नकाट महोदय इंग्लैड के अखबारों में हिन्दी लेखकों एवं ग्रंथों का परिचय देते रहते थे। तथा राजा लक्ष्मणसिंह, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रतापनारायण मिश्र आदि हिन्दी लेखकों से पत्र व्यवहार भी करते रहते थे।

7. बाबू नवीन चन्द्रराय –

इन्होंने सितार-ए-हिन्द के साथ उर्दू के पक्षपातियों से बराबर संघर्ष किया।

इनके एक व्याख्यान से हिन्दी के पक्के दुश्मन गार्सा-द-तासी बहुत नाराज हुए और उन्होंने नवीन बाबू को हिन्दू कहते हुए हिन्दी का विरोध एवं उर्दू का समर्थन किया।

भारतेन्दु युग-(पुनर्जागरण काल)-1857-1900 ई.

भारतेन्दु जी ने राजा शिवप्रसाद 'सितारे-ए-हिन्दी' व राजा लक्ष्मणसिंह की भाषाओं के बीच का मार्ग अपनाया।

इनका रचनाकाल 1850 से 1885 ई. तक रहा 35 वर्ष की आयु में मृत्यु।

ये सही अर्थ में हिन्दी गद्य के जनक माने जाते हैं।

क्योंकि इन्होंने न केवल गद्य की भाषा का संस्कार किया अपितु पद्य की ब्रज भाषा को भी सुधारा

भारतेन्दु युग में गद्य का आरम्भ नाटकों से हुआ। ये लेखक स्वयं ही अभिनय करते थे।

प. शितला प्रसाद त्रिपाठी कृत ''जानकी मंगल'' नाटक में भारतेन्दु जी ने स्वयं अभिनय किया।

इस काल की भाषा-गद्य खड़ी बोली में। पद्य ब्रज भाषा में।

भारतेन्दु काल की प्रमुख प्रवृतियाँ –

राष्ट्रीयता की भावना

समाज की दुर्दशा का चित्रण

भक्ति भावना

हास्य-व्यंग्य की प्रधानता

प्रकृति-चित्रण

समस्या-पूर्ति

प्रमुख पत्र-पत्रिकाएं–

1. सदादर्श (दिल्ली से)-लालश्री निवासदास संपादक
2. हिन्दी प्रदीप (प्रयाग से)-बालकृष्ण भट्ट
3. आनन्द कादम्बिनी (मिर्जापुर से)-बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमधन'
4. ब्राह्मण (कानपुर से)-प्रतापनारायण मिश्र
5. कविवचन सुधा (काशी)-भारतेन्दु हरिश्चन्द

6. हरिश्चन्द्र मैग्जीन 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' (बनारस)-भारतेन्दु हरिष्चन्द्र गद्य का परिष्कृत रूप इसी पत्रिका में सामने आया
7. बालवोधिनी (बनारस)-भारतेन्दु-नारी शिक्षा के लिए

भारतेन्दु काल के प्रमुख कवि–

1. भारतेन्दु-(जन्म 1850 ई. 1885 ई. तक (35 वर्ष))

इनके लेखन में राजभक्ति के साथ-साथ देशभक्ति की भावना विद्यमान थी।

ये हिन्दी नवजागरण के 'अग्रदूत' कहलाते हैं तथा इन्हें आधुनिक काल का जनक भी माना जाता है।

इनका मूल नाम 'हरिश्चन्द्र' था 'भारतेन्दु' की उपाधि 1880 में तत्कालीन साहित्यकारों एवं पत्रकारों ने दी।

ये प्रयोगधर्मी मनोवृति के साहित्यकार थे।

इनकी कविता की सबसे बड़ी विशेषता प्राचीन व नवीन का समन्वय है।

शुक्ल जी के अनुसार भारतेन्दु की कविता में सबसे ऊँचा स्वर देशभक्ति का था।

उर्दू में 'रसा' नाम से कविता लिखते थे।

इनके भक्तिकाव्य पर सूरदास जी का प्रभाव है।

हिन्दी गद्य का परिष्कृत रूप पहले पहल 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' में प्रकट हुआ।

प्रमुख रचनाएं -

मौलिक नाटक -

1. ''वैदिकी हिंसा हिंसा न भवित''
2. ''चन्द्रावली नाटिका''-प्रेम के आदर्श का निरूपण
3. ''विषस्य विषमौषधम''-देशी रजवाड़ी के षड़यंत्र
4. ''भारत दूर्दशा''
5. नीलदेवी-ऐतिहासिक नाटक
6. अंधेर नगरी
7. प्रेम योगिनी-धार्मिक पाखण्ड

8. सती प्रताप–अधूरा नाटक
9. भारत जननी

अनुदित नाटक

1. विद्या सुन्दर
2. कर्पूरमंजरी
3. पाखण्ड विडम्बन
4. धनन्जय विजय
5. मुद्राराक्षस

काव्य कृतियां –

1. प्रेम माधुरी
2. प्रेम तरंग
3. प्रेम प्रलाप
4. होली
5. मधु मुकुल
6. वर्षा विनोद
7. विनय प्रेम पचासा
8. प्रेम फुलवारी
9. दानलीला
10. बकरी विलाप
11. फुलों का गुच्छा (शुद्ध खड़ी बोली)

प्रमुख उपन्यास –

1. हम्मीर हठ
2. सुलोचना
3. शीलावती
4. सावित्रि चरित्र

प्रमुख निबंध –

1. सबै जाति गोपाल की
2. मित्रता

3. सूर्योदय
4. कुछ आप बीती कुछ जगबीती (मुकरियों ओर पहेलियों को लोकप्रिय बनाने का कार्य आधुनिक काल भारतेन्दु)

2. प्रतापनारायण मिश्र –

ये कानपुर की संस्था 'रसिक समाज' से जुड़े हुए थे।
ये हास्य व व्यंग्य में अग्रणी थे।
''ब्राह्मण'' पत्र का सम्पादन किया।
इन्होंने ''आल्हा एवं लावणी'' का प्रयोग अपने काव्य में किया

प्रमुख रचनाएं –

1. प्रेम पुष्पावली
2. मन की लहर
3. लोकोकक्ति शतक
4. शृंगार विलास
5. हिन्दी की हिमायत
6. बुढ़ापा
7. हरगंगा

3. बद्रीनारायण चौधरी ''प्रेमधन'' –

ये उतर प्रदेश के मिर्जापुर के ब्राह्मण थे।

इन्होंने ''साहित्यिक नागरी निरद'' एवं ''आनन्द कादंबिनी'' का सम्पादन किया।

इन्होंने 'अब्र' नाम से उर्दू में कविताएं भी लिखीं।

प्रमुख रचनाएं –

1. जीर्णजिनपद
2. आनन्द अरुणोदय
3. वर्षा बिन्दू
4. मयंक महिमा
5. लालित्य लहरी

4. अंबिका दत्त व्यास –

ये हिन्दी एवं संस्कृत दोनों भाषाओं के विद्वान थे।

इन्होंने ''पीयूष प्रवाह'' का सम्पादन कार्य किया।

प्रमुख रचनाएं –

1. हो-हो होरी
2. पावस पचासा
3. सूकवि सतसई

इन्होंने ''भारत सौभाग्य'' ''गौसंकट'' नाम से नाटक लिखे।

''बिहारी विहार'' में बिहारी के दोहों का कुण्डलियां छंद में भाव-विस्तार किया।

''कंश वध'' नाम से खड़ी बोली में प्रबंध काव्य की रचना की। जो अपूर्ण रहा।

5. जगमोहन सिंह –

इनके काव्य में श्रृंगार वर्णन एवं प्रकृति चित्रण प्रमुखता से मिलता है।

अलंकारों का स्वाभाविक नियोजन इन की रचनाओं में मिलता है।

प्रमुख रचनाएं –

1. प्रेम सम्पातिलता
2. श्यामालता
3. श्यामा सरोजिनी
4. ऋतुसंहार (अनुदित रचना)
5. मेघदूत (अनुदित रचना)

6. राधाकृष्णदास –

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के फुफेरे भाई थे।

प्रमुख रचनाएं –

1. भारत बारहमासा

2. देशदशा
3. राधाकृष्ण ग्रंथावली।

प्रतापनारायण मिश्र एवं राधाकृष्ण दास ने अपने काव्य में शृंगार चित्रण नहीं किया।

द्विवेदी युग (जागरण सुधार-नवजागरण)

समय-1900 से 1920 तक

नगेन्द्र के अनुसार-1900- 1918 तक

भारतीय जनमानस में स्वदेश प्रेम एवं नवजागरण के जो बीज भारतेन्दु युग में अंकुरित हुए थे वे द्विवेदी युग में पूर्ण पल्लवित होकर सामने आए।

इस युग का नामकरण 'आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी' के नाम पर है।

इस काल में काव्य भाषा के रूप में ब्रज भाषा का स्थान 'खड़ी बोली हिन्दी' ने लिया।

द्विवेदी जी ने भाषा संस्कार, व्याकरण, शुद्धि, विराम-चिन्हों के प्रयोग द्वारा हिन्दी को परिनिष्ठित करने का कार्य किया।

संस्कृत छंदों की उपयोगिता बताकर द्विवेदी जी ने छंदों में क्रांति लाने का कार्य किया तथा ''कवित सवैया'' का बहिष्कार किया।

हिन्दी कविता को प्राचीन रूढ़िबद्धता से अलग करने में द्विवेदी युग के कवियों का विशेष योगदान रहा।

भारतेन्दु कालीन साहित्यकार जहां भारत दुर्दषा पर दु:ख प्रकट करके रह गए थे वहीं द्विवेदी युग के कवियों ने स्वतंत्रता प्राप्ति की प्रेरणा भी दी।

इस काल में मातृभूमि प्रेम, स्वेदश गौरव, सामाजिक विषय आदर्शवाद आदि को कविता में स्थान मिला।

द्विवेदी के प्रभाव से श्रीधर पाठक, नाथूराम शर्मा (शंकर) एवं 'हरिऔध' ने ब्रज भाषा को छोड़कर खड़ी बोली को अपनाया।

'प्रभा' एवं 'मर्यादा' इस काल का महत्वपूर्ण पत्रिकाएं थीं।

सरस्वती पत्रिका का प्रकाशन 1900 ई. से प्रारम्भ हुआ तथा सन् 1903 से 1920 ई. तक द्विवेदी जी ने सपांदन कार्य किया।

द्विवेदी युग में प्रकृति को पहली बार काव्य विषय के रूप में मान्यता मिली है।

इस काल में जगन्नाथदास रत्नाकर सत्यनारायण कविरत्न, रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' एवं वियोगी हरि ने ब्रज भाषा में रचनाएं कीं।

अनुशासन धारा के कवि-(द्विवेदी मण्डल कवि)

- मैथिलीशरण गुप्त
- हरिऔध
- नाथूराम शर्मा (शंकर)
- सियारामशरण गुप्त

स्वछंदतावादी काव्यधारा के कवि-द्विवेदी मण्डल के बाहर के कवि

- मुकुटधर पांडे
- लोचन प्रसाद पांडेय
- रामनरेश त्रिपाठी

- ''सरस्वती पत्रिका के ''हे कवियो' प्रकाशन में द्विवेदी जी ने ब्रज भाषा के चिरप्रयोग पर क्षोभ व्यक्त किया।

प्रमुख प्रवृतियां-

राष्ट्रीय भावना
सामाजिक समस्याओं का चित्रण
इतिवृतात्मकता
नैतिकता एवं आदर्शवाद
काव्यरूपों की विविधता
खड़ी बोली का काव्यभाषा के रूप में प्रयोग
प्रकृति चित्रण
छन्दों की विविधता
हास्य व्यंग्य
प्रमुख रचनाकार एवं रचनाएं -

1. मैथिलीशरण गुप्त -

1. इन्हें हिन्दी का राष्ट्रीय काव्यधारा का प्रतिनिधि कवि एवं राष्ट्रकवि कहा जाता है।
2. इन्होंने हिन्दी साहित्य में उपेक्षित नारी पात्रों को विषेष महत्व दिया।

3. तथा ''साकेत-यषोधरा'' आदि रचनाएं कीं।
4. 'भारत-भारती' ने बहुत प्रसिद्धि पायी जिसमें भारत अतीत गौरव का गान है। अंग्रेजों ने इसे प्रतिबंधित कर दिया था।
5. इनकी आरम्भिक रचनाएं 'वेष्योपकारक' में प्रकाशित होती थी बाद में सरस्वती में प्रकाशित होने लगी।
6. इनकी प्रथम रचना 'रंग में भंग' का प्रकाषन 1909 में हुआ।
7. 'भारत-भारती' का प्रकाशन-1912 में (राष्ट्रकवि की उपाधि मिली)
8. ये रामभक्त कवि थे इसका उदाहरण इनकी रचना साकेत है।
9. साकेत के 9वें सर्ग में उर्मिला का विरह वर्णन है।
10. यशोधरा-बुद्ध के गृह त्याग पर आधारित है।

अन्य रचनाएं

- जयद्रथ वध
- पंचवटी
- झन्कार
- साकेत (1931)
- यशोधरा (1932)
- द्वापर
- जयभारत
- विष्णुप्रिया

प्रमुख नाटक

- चन्द्रहास
- अनध

अर्जन और विसर्जन' तथा ''काबा और कर्बला'' इनकी मुस्लिम संस्कृति से संबंधी रचनाएं हैं।

''किसान'' और ''विश्ववेदना'' सामाजिक रचनाएं हैं।

2. अयोध्या सिंह उपाध्याय ''हरिऔध'' -

पुरातन संस्कृत का पुनरोद्धार एंव कविता में
उपदेशात्मक प्रवृत्तियाँ
इनकी मुख्य विषेषताएं हैं।

(1914) ''प्रिय प्रवास'' खड़ी बोली का प्रथम महाकाव्य है। इसमें राधा और कृष्ण को सामान्य नायक-नायिकाओं तो ऊपर विश्वशैली एवं विश्वप्रेमी के रूप में चित्रित कर 'हरिऔध' ने अपनी मौलिकता का परिचय दिया है।

(1940) ''वैदेही वनवास'' खड़ी बोली में रचित तथा रामकथा पर आधारित महाकाव्य है।

''रसकलश'' रीति ग्रंथ रस के प्रकार एवं स्वरूप का वर्णन भाषा ब्रज है।

''पद्य प्रसुन''

चुभते चौपदे

चौखे चापदै

बोलचाल

परिजात

''प्रिय प्रवास'' के लिए ''मंगलप्रसाद'' पारितोषिक मिला

इन्हें 'कवि सम्राट' भी कहा जाता है।

3. नाथूराम शर्मा (शंकर) -

इन्होंने राजा विवर्मा के चित्रों के आधार पर सुन्दर काल की रचना की। इन्हें 'कविता कामिनी कान्त', 'भारतेन्दु प्रज्ञेन्दु, 'साहित्य सुधाकर' आदि उपाधियों से विभूषित किया गया है।

4. श्रीधर पाठक -

इन्होंने ब्रज एंव खड़ी बोली दोनों में काव्य रचना की

प्रमुख वृतियां -

- काश्मीर सुषमा
- देहरादून
- वनाष्टक
- श्रृंगार

इन्होंने 'गोल्ड स्मिथ' की रचनाओं का अनुवाद ''उजड़ग्राम'' (डेजर्ट विलेज) एकान्तवासी योग (हर्मिट), श्रान्तपथिक (दे ट्रेवलर) नाम से किया

5. महावीर प्रसाद द्विवेदी -

रचनाएं -

- काव्य मंजूषा
- सुमन
- कान्यकुब्ज
- अबला विलाप (मौलिक अध्याय)

गंगा लहरी, ऋतुतरंगिणी, कुमार सम्भव सार (अनुदित रचनाएं)

6. राय देवीप्रसाद पूर्ण -

इन्होंने ''धारा-धर-धावन'' शीर्षक से 'कालीदास' के 'मेघदूत' का पद्यानुवाद किया।

'स्वदेशी कुण्डल' में देशभक्ति से पूर्ण 52 कुण्डलियों की रचना की है।

अन्य रचनाएं -

- मृत्युंजय
- राम रावण विरोध
- वसन्त वियोग

7. गया प्रसाद शुक्ल 'स्नेही' -

इन्होंने हिन्दी के साथ उर्दू में भी रचनाएं कीं।

श्रृंगार से सम्बन्धित रचनाएं 'स्नेही' उपनाम से तथा राष्ट्रीय भावना से सम्बन्धि रचनाएं ''त्रिशूल'' उपनाम से की।

''सुकवि'' नामक पत्रिका का सम्पादन किया।

प्रमुख रचनाएं -

- कृषक क्रन्दन
- प्रेम पचीसी
- राष्ट्रीय वीणा
- त्रिशूलत रंग
- करूणा कादम्बिनी

'भारतोत्थान' एवं 'भारत प्रशंसा' उनके देशभक्ति के परिपूर्ण काव्य है।

'बाल विधवा' में सामाजिक भावना तथा जार्ज वंदना में राजभक्ति की भावना विद्यमान है।

8. रामनरेश त्रिपाठी -

प्रमुख रचनाएं -
- मिलन (1977)
- पथिक (1920)
- मानसी (1927)
- स्वप्न (1929)
- कविता कौमुदी (आठ भागों में)

'मानसी' में देशभक्ति की फुटकर कविताएं है।

9. गिरीधर शर्मा (नवरत्न) -

ये झालारापाटन राजस्थान के थे।

इनकी प्रमुख मौलिक रचना ''मातृवंदना'' है।

''ब्रज भाषा में काव्य रचना''

10. जगन्नाथदास 'रत्नाकर' -

इन्होंने 'जकी' उपनाम से उर्दू में रचना की।

इनकी रचना 'उद्धवशतक' भ्रमरगीत परम्परा का ग्रंथ है। तथा यह ब्रज भाषा की अंतिम प्रसिद्ध रचना मानी जाती है।

प्रमुख रचनाएं -
- गंगावतरण
- श्रृंगार लहरी
- हरिश्चन्द

❐❐❐